श्रीअरविन्द कर्मधारा

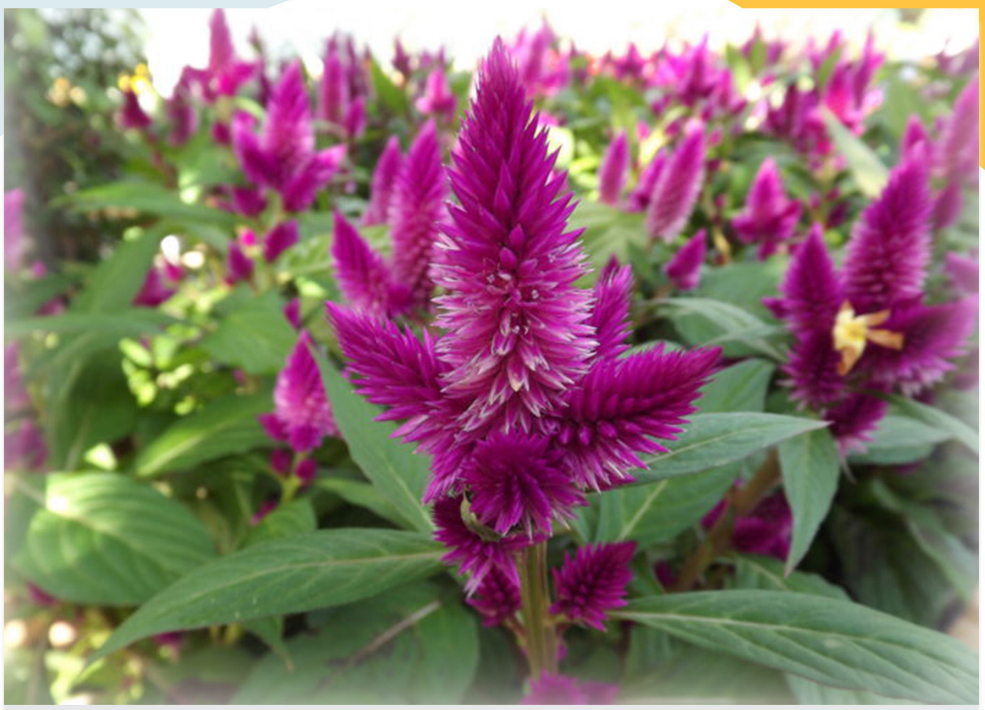

ॐ असतो मा सद्गमय ।
तमसो मा ज्योतिर्गमय ।
मृत्योर्मा अमृतं गमय ।

श्रीअरविन्द आश्रम-दिल्ली शाखा
श्रीअरविन्द मार्ग, नई दिल्ली

नवम्बर, 2019 अंक 4

श्री अरविन्द कर्मधारा

श्री अरविन्द आश्रम दिल्ली शाखा का मुखपत्र

नवम्बर 2019

(अंक-4)

संस्थापक

श्री सुरेन्द्रनाथ जौहर फकीर`

सम्पादन : अपर्णा रॉय

विशेष परामर्श समिति

कु0 तारा जौहर, विजया भारती,

ऑनलाइन पब्लिकेशन ऑफ श्री अरविन्द आश्रम दिल्ली शाखा (नि:शुल्क उपलब्ध)

कृपया **सब्सक्राइब करें-**

saakarmdhara@rediffmail.com

कार्यालय

श्री अरविन्द आश्रम दिल्ली-शाखा

श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली-110016

दूरभाषः 26567863, 26524810

आश्रम वैबसाइट

(www.sriaurobindoashram.net)

लक्ष्य-प्राप्ति

चाहे तपस्या द्वारा हो या समर्पण द्वारा, बस इसका कोई महत्व नहीं है, महत्वपूर्ण बस यही चीज है कि व्यक्ति दृढ़ता के साथ अपने लक्ष्य की ओर अभिमुख हो। जब एक बार कदम सच्चे मार्ग पर चल पड़े तो कोई वहाँ से हटकर ज्यादा नीची चीज की ओर कैसे जा सकता है ? अगर आदमी दृढ़ बना रहे तो पतन का कोई महत्व नहीं. आदमी फिर उठता है और आगे बढ़ता है। अगर आदमी अपने लक्ष्य की ओर दृढ़ रहे तो भगवान् के मार्ग पर कभी अन्तिम असफलता नहीं हो सकती। और अगर तुम्हारे अन्दर कोई ऐसी चीज है जो तुम्हें प्रेरित करती है, और वह निश्चित रूप से है, तो लड़खड़ाने, गिरने या श्रद्धा की असफलता का परिणाम में कोई महत्वपूर्ण फर्क नहीं पड़ेगा। संघर्ष समाप्त होने तक चलते जाना चाहिये। सीधा, खुला हुआ और कंटकहीन मार्ग हमारे सामने है।

-श्रीअरविन्द

नवम्बर, 2019

प्रार्थना और ध्यान

श्रीमाँ

यह सब कोलाहल किस लिये, यह दौड़-धूप, यह व्यर्थ की थोथी हलचल किस लिये? यह बवंडर किस लिये जो मनुष्यों को झँझावात में फँसे हुये मक्खियों के दल की भाँति उड़ाये ले जाता है? यह समस्त व्यर्थ में नष्ट हुई शक्ति, ये सब असफल प्रयत्न कितना शोकप्रद दृश्य उपस्थित करते हैं। लोग रस्सियों के सिरे पर कठपुतलियों की भाँति नाचना कब बन्द करेंगे? वह यह भी नहीं जानते कि कौन या क्या वस्तु उनकी रस्सियों को पकड़े उनको नचा रही है। उनको कब समय मिलेगा शांति से बैठकर अपने-आप में समाहित होने का, अपने-आपको एकाग्र करने का, उस आंतरिक द्वार को खोलने का जो तेरे अमूल्य खजाने, तेरे असीम वरदान पर पर्दा डाल रहा है?

अज्ञान और अंधकार से भरा हुआ, मूढ़ हलचल तथा निरर्थक विक्षेपवाला उनका जीवन मुझे कितना कष्टप्रद और दीन हीन लगता है जबकि तेरे उत्कृष्ट प्रकाश की एक किरण, तेरे दिव्य प्रेम की एक बूँद इस कष्ट को आनन्द के सागर में परिवर्तित कर सकती है। हे प्रभु मेरी प्रार्थना तेरी ओर उन्मुख होती है, आखिर ये लोग तेरी शान्ति तथा उस अचल और अदम्य शक्ति को जान लें जो अविचल धीरता से प्राप्त होती है और यह धीरता केवल उन्हीं के हिस्से आती हैं, जिनकी आँखें खुल गईं हैं और जो अपनी सत्ता के जाज्वल्यमान केन्द्र में तेरा चिन्तन करने योग्य बन गये हैं।

परन्तु अब तेरी अभिव्यक्ति की घड़ी आ गयी है और शीघ्र ही आनन्द का स्तुति-गान सब दिशाओं से फूट पड़ेगा। इस घड़ी की गम्भीरता के आगे मैं भक्तिपूर्वक शीश नवाती हूँ।

हे दिव्य स्वामी, कृपा प्रदान कर कि यह दिन हमारे लिये तेरे विधान के प्रति अधिक पूर्ण आत्मनिवेदन का, तेरे कर्म के प्रति अधिक सर्वांगीण समर्पण का, अधिक समय निज-विस्मृति का, अधिक विशाल प्रकाश का तथा अधिक पवित्र प्रेम का अवसर बने; और यह भी कृपा कर कि तेरे

साथ अधिकाधिक गम्भीर और अटूट अन्तर्मिलन द्वारा हम उत्तरोत्तर अधिक अच्छी तरह तेरे योग्य सेवक बनने के लिये अपने-आपको तेरे साथ एकीभूत करें। हमसे समग्र अहंता, तुच्छ अभिमान, सारा लोभ और सारा अंधकार दूर कर, ताकि तेरे दिव्य प्रेम से पूर्णतया प्रज्जवलित होकर संसार में हम तेरी दीपिकाएँ बनें।

पूर्व की सुवासित धूप के सफेद धुएँ के समान मेरे हृदय से एक मौन गीत उठता है
और पूर्ण समर्पण के प्रशांत भाव में इस दिनोदय के समय मैं तुझे नमस्कार करती हूँ।

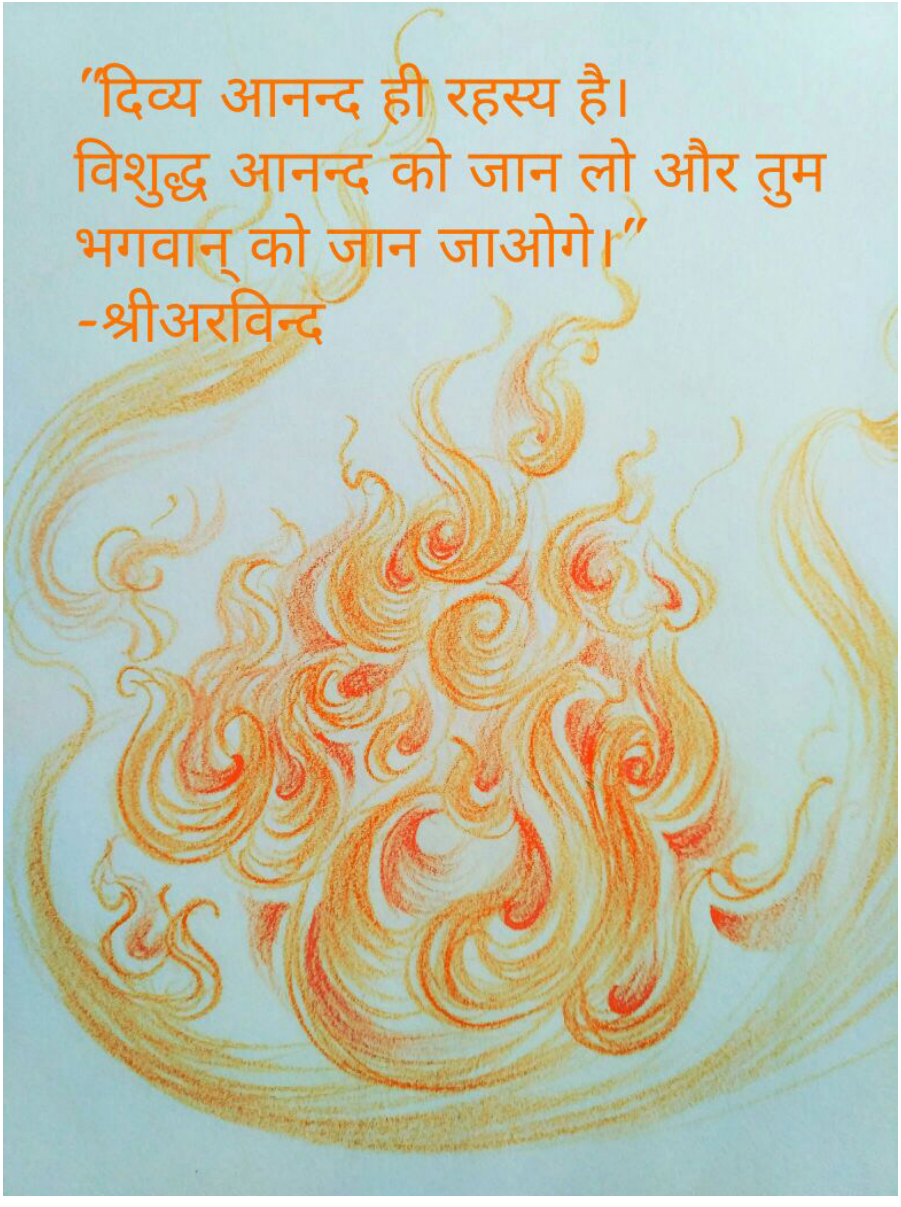

नवम्बर, 2019

सम्पादकीय

जन्म और मृत्यु प्रकृति के द्वारा होने वाली सहज प्रक्रिया मानी जाती हैं। धीरे -धीरे इस मान्यता ने मानव के भौतिक मन में जन्म को आरंभ तथा मृत्यु को अंत मानने की भ्रांति स्थापित कर दी है, किन्तु श्रीअरविन्द की कविता 'क्या यही अन्त है' एक अलग ही सच उजागर करती है:

'क्या यही अन्त है उस सबका जो हम रहे हैं,
और वह सब जो हमने किया और स्वप्न में संजोया,
एक विस्मृत नाम और मिटा हुआ एक रूप,
क्या यही अन्त है...?

श्रीअरविन्द की यह कविता मानो मृत्यु पर ही एक प्रश्न चिन्ह है, एक चुनौती है। श्रीअरविन्द कह रहे हैं क्या सचमुच यही अंत है? जब वे यह प्रश्न उठाते हैं तो मानो मूक वाणी चुपचाप, बिना किसी शब्द के इतने सारे सवाल पूछ जाती है, तब फिर क्यों शाश्वत माना गया ये सौर-मण्डल, ये आकाश, ये अनन्त तारा मण्डल! क्योंकि ये न बनते तो पृथ्वी न बनती और पृथ्वी न बनती तो पार्थिव जीवन न होता, यदि पार्थिव जीवन न होता तो मृत्यु और विनाश की कल्पना भी सम्भव न होती। इसका साक्ष्य उनका योग और दर्शन है जो मृत्यु पर एक सवाल है और उसका उत्तर भी। हमारा पार्थिव जीवन विकास की अनंत यात्रा है, इसमें जीवन और मृत्यु के सोपान आते हैं। ये गंतव्य नहीं है। गंतव्य है अतिमानस का जीवन, जो शाश्वत है, वर्तमान मर्त्य जीवन से अत्यंत परे ...।

श्रीअरविन्द ने कहा-

'वीणा पड़ी हुई है खामोश और खंडित
क्या वह अनदेखा गायक मर चुका है
चूँकि वृक्ष गिरा लिया गया है, जिस पर चिड़ियाँ गाती थीं,
क्या गीत को भी मूक हो जाना चाहिए...?'

वीणा को बजाने वाले की मृत्यु से क्या संगीत को बनाने वाला अदृश्य कलाकार भी मर गया ? क्या संगीत के जादू का भी अन्त हो गया ? क्या वृक्ष के गिर जाने से उस पर चहचहाने वाली चिड़ियों का संगीत भी समाप्त हो जाएगा ? नहीं, इसका अन्त नहीं होगा, इसके पीछे सक्रिय अदृश्य शक्ति का अंत

नहीं हो सकता, जब तक कि वह कार्य पूरा नहीं होता जिसके लिए इन सितारों का जन्म हुआ था, जब तक हृदय भगवान को नहीं पा लेता, आत्मा स्वयं को नहीं जान जाती, जब तक अतिमानस नहीं आ जाता तब तक, बल्कि उसके बाद भी अन्त नहीं। जो अव्यक्त है, जब वह व्यक्त होगा, तब आनन्द की अनुभूति होगी, उसके बाद चित्त आएगा, सत्य आएगा। उसके बाद भी अन्त कहाँ क्योंकि-

श्रीअरविन्द कहते हैं कि उसके बाद भी जो होगा, वह अब तक अज्ञात है...

अतः हमें श्रीअरविन्द के योग मार्ग पर मृत्यु को मात्र एक पड़ाव मान कर आगे बढ़ना होगा। हम उस परमात्मा के अंश हैं। वह, जो हमारे अंदर विराजमान है, हमारे साथ आ रहा है और हमें इस धरा को ही रूपान्तरित करने के लिए प्रेरित कर रहा है। श्रीअरविन्द की अगली पंक्तियाँ कहती हैं...

'मन में वह एक जिसने योजना बनाई,
सोचा और संकल्प किया ,
पृथ्वी के भाग्य को पुनर्गठित करने हेतु कार्य किया,
हृदय में वह एक जिसने प्यार किया और आशा की,
क्या उसका भी अन्त है ?'

मृत्यु में कहाँ वह सामर्थ्य है जो उसका अन्त कर सके। वर्तमान मानव-अस्तित्व अपूर्ण है, उसे पूर्णता प्राप्त करनी है, चिरन्तनता प्राप्त करनी है। मृत्यु तब तक ज़रूरी है, जब तक कि हम अतिमानस रुप धारण नहीं कर लेते। हमें उसे स्वीकार करना है, लेकिन एक पड़ाव के रुप में, भागवत कृपा के रुप में, अगर भागवत शक्ति के प्रति हम निश्चित हैं तो हमें भय कैसा ? अतः ना जन्म को आरंभ कहा जा सकता है, ना ही मृत्यु को अन्त माना जा सकता है।

पत्रिका का यह अंक मूल रुप से मानव जीवन के लक्ष्य की खोज, उस पर चलने के मार्ग का निर्धारण, अंततः मृत्यु से जुड़े चिरन्तन प्रश्नों के उत्तर देते हुए 17 नवम्बर से लेकर 5 दिसम्बर तक आने वाले तीन दर्शन दिवसों के कारण विशेष रुप से महत्वपूर्ण है। ऐसा लगता है कि श्रीमाँ का शरीर त्याग (17 नवम्बर) तथा श्रीअरविन्द के महासमाधि दिवस (5 दिसम्बर) के मध्य सिद्धि दिवस (24 नवम्बर) हमारे समक्ष मानव चेतना के क्रमशः उत्कर्ष के साथ-साथ विश्व रूपांतरण की घोषणा निश्चित करता है।

शुभेच्छा के साथ

- अपर्णा

अनुक्रम

1.	चिरन्तन प्रश्न	संकलन	9
2.	मृत्यु के क्षण	संकलन	10-11
3.	श्रीमाँ का शरीर-त्याग	नीरद बरण	12-13
4.	सिद्धि-दिवस	पूर्व प्रकाशित	14-17
5.	श्रीमाँ के समीप आती भयभीत मृत्यु	विमला गुप्ता	18-19
6.	अनुभूति के क्षण(कविता)	सुरेशचंद्र त्यागी	20-21
7.	कर्मयोग	संकलन	22-23
8.	पूर्ण योग की प्रक्रिया	संकलन	23
9.	श्रीअरविन्द श्री माँ के विषय में	श्रीअरविन्द	24
10.	श्रीमाँ के प्रति उद्घाटन व समर्पण	श्रीअरविन्द	25-29
11.	धन्य अवनि	सुमित्रानन्दन पतं	30
12.	श्रीअरविन्द महासमाधि	श्री सुरेन्द्र नाथ जौहर	32-34
13.	दर्शन दिवस की शुरुआत	विमला गुप्ता	35-38
14.	दर्शन का सच्चा अभिप्राय	विमला गुप्ता	39
15.	मैं तुम्हारी माँ हूँ	श्रीमाँ मातृवाणी	40-42
16.	श्रीमाँ का वकतव्य	संकलन	43-44
17.	श्रीमाँ के सन्देश	संकलन	45-46
18.	श्रीमाँ के चिह्नः क्या हो हमारी मनोवृत्ति?	संकलन	47-50
19.	श्रीमाँ (कृतज्ञता-ज्ञापन)	संकलन	51-52
20.	सब बंधनो से मुक्त हो जाओ	श्रीमाँ	53
21.	श्री त्रियुगी नारायण -(संस्मरण)	चरण सिंह केदारखंडी	54-55
22.	श्री त्रियुगी जी: स्मृतियाँ	प्रकाश वर्मा	56-59
23	आश्रम की गतिविधियॉ	रिपोर्ट	60-62

चिरन्तन प्रश्न

मृत्यु के पश्चात् क्या होता है?

मनुष्य की जो अन्तरात्मा है वह प्रत्येक बार जन्म लेती है और प्रत्येक बार एक मन, प्राण और शरीर, विश्व प्रकृति के स्थूल पदार्थों के द्वारा गठित कर दिए जाते हैं जो कि अन्तरात्मा के विगत जीवन के अनुसार होते हैं और आगामी भविष्य की आवश्यकता के अनुरूप होते हैं ।

जब शरीर विनष्ट हो जाता है तब प्राण प्राणमय जगत में चला जाता है और वहाँ कुछ समय तक रहता है लेकिन कुछ समय बाद प्राणमय तत्व भी घुल जाता है और अन्त में मनोमय तत्व भी विलीन हो जाता है और अन्तरात्मा अथवा 'चैत्य सत्ता' चैत्य जगत में विश्राम हेतु चली जाती है, जब तक कि वह नया जन्म न ग्रहण कर ले।

यही सामान्यतः विकसित मानवीय सत्ताओं की जन्म-मरण की प्रक्रिया है। प्रत्येक व्यक्ति की सत्ता की निजी प्रकृति के विकास के अनुसार अनेक प्रक्रियाएँ हैं जो कि उसके प्रत्येक जन्म के विकास के अनुरूप होती हैं और इस प्रक्रिया पर निर्भर करती हैं, उदाहरणार्थ यदि मनोमय सत्ता पर्याप्त विकसित हो चुकी है तो वह विलुप्त अथवा विनष्ट न होकर अपना अस्तित्व बनाए रखती है और यही प्राणमय सत्ता के साथ भी होता है। और तब ये दोनों ही चैत्य सत्ता के चारों ओर बने रहते हैं और उसकी अमरता के साझीदार अथवा अंशभाग हो जाते हैं।

अन्तरात्मा जीवन के प्रमुख एवं विशेष अनुभवों को अपने अन्दर एकत्रित करती है और विकास क्रम में उन्हें अपनी उन्नति का साधन और आधार बनाती है। जब वह वापस जन्म के कक्ष में लौटती है तब वह अपने मानसिक, प्राणिक एवं शारीरिक आवरणों को ग्रहण कर लेती है जोकि उसके कर्म के अनुरूप नवजीवन के भावी अनुभवों के लिये लाभदायक हैं ।

पृथ्वी पर मृत्योपरान्त जितने भी श्रद्धापूर्ण अनुष्ठान किए जाते हैं, वे वास्तव में प्राणमय सत्ता के लिए होते हैं जिससे अन्तरात्मा को प्राणमय प्रकम्पनों से छुटकारा पाने में सहायता मिल सके जो कि अभी तक इस भौतिक तल पर और प्राणिक जगत् में उससे जुड़े हुए हैं ताकि वह अपने विश्राम स्थल चैत्य शान्ति में शीघ्रातिशीघ्र पहुँच सके।

श्रीअरविन्द

मृत्यु के क्षण

(मृत्यु के प्रति उचित मनोभाव)

चाहे जो भी परिस्थिति हो, यदि तुम्हारा मन उसे अनुकूल वस्तु के रुप में देखने का अभ्यासी हो, तो वह तुम्हारे लिए ज़रा भी कष्टदायी नहीं रहेगी। यह बिलकुल सुपरिचित बात है; जब तक मन किसी चीज़ को स्वीकार करने से इन्कार करता है, उससे संघर्ष करता है, उसे बाधा पहुँचाने की कोशिश करता है, तब तक मनुष्य के अन्दर यन्त्रणाएँ, कठिनाइयाँ, तूफान, आन्तरिक संघर्ष तथा समस्त दुःख क्लेश रहते ही हैं। परन्तु जिस क्षण मन यह कहता है, 'बहुत अच्छा, यही चीज़ है जिसे आना था, बस इसी तरह इसे घटित होना था ,' तो जो कुछ होता है उससे तुम सन्तुष्ट रहते हो। ऐसे लोग हैं जिन्होंने अपने शरीर पर अपने मन का ऐसा संयम प्राप्त कर लिया है कि वे कुछ भी अनुभव नहीं करते; उस दिन मैने कुछ हृदयवदियों के विषय में यही बात कही थी, यदि वे यह समझते हैं कि जो यातना उन्हें पहुँचायी जा रही है वह उन्हें एक क्षण में अपनी चेतना के वर्तमान स्तरों को पार करने में और 'सिद्धि' प्राप्त करने, अपने सामने रखे हुये लक्ष्य को प्राप्त करने, भगवान के साथ एकत्व प्राप्त करने के लिए उन्नति के साधन के रुप में सहायता करेगी तो फिर वे यातना का अनुभव बिलकुल नहीं करते। ऐसा लगता है कि मानो उनके शरीर पर मानसिक विचार की कलई चढ़ गयी हो। ऐसी बात बहुत बार घटित हो चुकी है; यह उन लोगों का बहुत सामान्य अनुभव रहा है, जिनमें वास्तव में तीव्र धर्मानुराग रहा है। वैसे भी, यदि मनुष्य को किसी न किसी कारणवश अपना शरीर छोड़ना और नया शरीर लेना ही हो तो क्या यह अधिक अच्छा नहीं है कि मृत्यु को कोई वीभत्स पराजय बनाने की जगह भव्य हर्षयुक्त और उत्साहपूर्ण वस्तु बना दिया जाए? जो लोग जीवन से चिपके रहते हैं, जो एक या दो क्षण भी अपना अन्त रोक रखने के लिए प्रत्येक सम्भावित उपाय से चेष्टा करते हैं, जो तुम्हारे सामने भीषण वेदना का उदाहरण रखते हैं, इससे यही प्रदर्शित होता है कि वे अपनी अन्तरात्मा के विषय में सचेतन नहीं हैं।

मनुष्य इस घटना को एक साधन में बदल सकता है; यदि मनुष्य सचेतन हो तो वह प्रत्येक चीज़ की तरह, मृत्यु को भी एक सुन्दर वस्तु, बहुत सुन्दर वस्तु बना सकता है। जो लोग इससे नहीं डरते, जो बेचैन नहीं होते, जो बिना किसी मलिनता के मर सकते हैं, वे ऐसे लोग होते हैं जो कभी मृत्यु की बात नहीं सोचते, अपने सम्मुख उपस्थित इस सन्त्रास से हर समय घिरे नहीं रहते, जिससे कि उन्हें अवश्य बचना है, और जिसे वे अपने से जितनी दूर सम्भव हो, उतनी दूर धकेलने की कोशिश भी नहीं करते हैं। ऐसे लोग जब अवसर उपस्थित होता है, अपना मस्तक उठा कर हँसते हुए कह सकते हैं- 'मैं यहाँ हूँ।' बस, ये ही लोग हैं जिनके अन्दर अपने जीवन का यथासम्भव सर्वोत्तम उपयोग करने का संकल्प होता

है, ये ही लोग हैं जो कहते हैं, "जब तक आवश्यक है तब तक, उसके अन्तिम क्षण तक, मैं यहाँ बना रहूँगा और मैं अपने लक्ष्य की सिद्धि के लिए एक क्षण भी नहीं खोऊँगा:" ये ही लोग, जब आवश्यकता पड़ती है, सर्वोत्तम दृश्य उपस्थित करते हैं। क्यों? यह बहुत सरल है, क्योंकि वे अपने आदर्शों में निवास करते हैं, अपने आदर्श के सत्य में रहते हैं, क्योंकि उनके लिए यही सच्ची वस्तु होती है, उनके जीने का एकमात्र प्रयोजन और सभी वस्तुओं में वे इस आदर्श को, सत्ता के इस प्रयोजन को देख सकते हैं। वे कभी भी स्थूल जीवन की गन्दगी में नीचे नहीं उतरते ।

अतएव, निष्कर्षतः कहा जा सकता है:

'कभी मृत्यु की इच्छा नहीं करनी चाहिये।'

'कभी मरने का संकल्प नहीं करना चाहिये।'

'कभी मरने से भयभीत नहीं होना चाहिये।'

और सभी परिस्थितियों में अपने-आपको अतिक्रम करने का संकल्प बनाये रखना चाहिये।

जब किसी प्रियजन की मृत्यु तो उस परम प्रभु से कहो, 'तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो और जितना सम्भव हो, उतने शान्त बने रहो'।

यदि बिछुड़ने वाला व्यक्ति तुम्हारा कोई बहुत प्रिय हो, जिसे तुम प्यार करते हो तो तुम्हें अपने प्रेम पर उसके लिए शान्ति एवं नीरव भावना से एकाग्र होना चाहिए जिससे उस दिवंगत आत्मा को तुम्हारी ओर से अधिकाधिक सहायता मिल सके।

मृत्यु के संबंध में मेरे कुछ परामर्श इस प्रकार हैं -

1. व्यक्ति को मृत्यु की कभी कामना नहीं करनी चाहिए।

2.व्यक्ति को मृत्यु से कभी भयभीत नहीं होना चाहिए।

3.समस्त परिस्थितियों में व्यक्ति को अपने मैं से विश्वसत्ता (व्यष्टि से समिष्टि) की ओर, आगे बढ़ जाना चाहिए।

(यहाँ माताजी व्यक्ति को अधिक व्यापक और विस्तृत होने की सलाह दे रही हैं)

श्रीमाँ

श्रीमाँ का शरीर-त्याग

(17 नवम्बर ,1973)

इस वर्ष अप्रैल में श्रीमाँ ने कोई बहुत महत्वपूर्ण फैसला कर लिया था। वह क्या था, यह उन्होंने नहीं बताया, यही उनका तरीका था। उनके बाहरी कार्यक्रम में बहुत फर्क पड़ गया। उन्होंने बाहरी काम-काज लगभग बन्द कर दिया और 21 मई से लोगों के साथ मिलना-जुलना एकदम बन्द हो गया। जो उनका शारीरिक काम-काज देखते थे, वे ही अपवाद थे ।

हमारे लिए यह स्पष्ट था कि वे भौतिक रूपान्तरण के लिए काम कर रही थीं, लेकिन हमें यह पता न था कि इसका क्या परिणाम होगा। जिन डॉक्टर ने उनका निरीक्षण किया उन्हें किसी खास आधि-व्याधि का कोई चिह्न नहीं मिला। परन्तु वे सारे समय अपने अन्दर ही रहा करती थीं और नाम मात्र को ही खाती थीं। 17 नवम्बर तक यही हाल रहा। उस दिन कोई विशेष फर्क नहीं दिखायी दिया। इस दिन तो उन्होंने पिछले दिन की अपेक्षा कुछ ज्यादा ही भोजन लिया था। उस दिन शाम को ऐसा लगा कि वे चलने की तैयारी में हैं। सात बजकर पच्चीस मिनट पर उनके हृदय की गति बन्द हो गयी। डॉक्टर ने मालिश की, लेकिन उसका कोई असर नहीं हुआ। तब यह निश्चित हो गया कि उन्होंने शरीर त्याग दिया है।

अब माताजी के शरीर को दर्शनार्थ उनके ऊपर के कमरे से नीचे ध्यान-कक्ष में उतारा गया। आश्रमवासियों तथा अन्य लोगों को इन शब्दों में सूचना दी गयी-

"श्री माताजी ने कल, 17 नवम्बर, 1973 को शाम के सात बजकर पच्चीस मिनट पर शरीर त्याग दिया। उनके शरीर - त्याग का तात्कालिक कारण हृदय-गति का रूक जाना था। उनका शरीर शिष्यों, भक्तों और साधारण जनता के दर्शन के लिए रखा गया है और जब तक सम्भव होगा रखा रहेगा ...,

'उनका सन्देश सब जानते हैं, वह उनके जीवित-जागृत वचनों में है, एक नयी मानव जाति का जन्म होगा। उनकी इच्छा पूर्ण हो।"

सवेरे लगभग तीन बजे से दर्शन के लिए आश्रमवासियों का आना शुरू हो गया। सरकारी विभागों को और आकाशवाणी को सूचना दी गयी और तार से देश-विदेश में समाचार भेजे गये। राष्ट्रपति, प्रधानमन्त्री तथा अन्य बहुत से राज्यपालों, मुख्यमन्त्रियों की श्रद्धांजलियाँ आईं। साढ़े चार बजे से बाहर वालों के लिए द्वार खोल दिये गये। पॉण्डिचेरी के उपराज्यपाल स्वयं जल्दी आने वालों में से थे।

डॉक्टर दिन में दो बार शरीर की परीक्षा करते थे। 19 तारिख को सवेरे उन्होंने फैसला किया कि

शरीर को 20 नवम्बर तक ही रखा जा सकता है। इसके अनुसार यह निश्चय किया गया कि उनके शरीर को 20 नवम्बर को सवेरे आठ बजे समाधिस्थ कर दिया गया। जिस बक्से में श्रीमाँ के पार्थिव शरीर को रखा गया था, वह एक इन्च मोटे आबनूस का बना हुआ था जिसके अन्दर चाँदी का अस्तर था। चाँदी के ऊपर मखमळ और उस पर सफेद अस्तर लगाया गया था। बक्से के ढक्कन यर शुद्ध सोने का बना हुआ माताजी का प्रतीक था।

श्रीअरबिन्द की समाधि को खोला गया। वह लगभग आठ फुट गहरा तहखाना है जिसमें पानी की एक बून्द भी नही जा सकती। श्रीअरविन्द का शरीर 1950 से वहीं विश्राम कर रहा है। उसी के ऊपरी भाग में श्रीमाँ के शरीर के लिये जगह पहले से तैयार थी। बक्से को आदर के साथ वहीं स्थापित किया गया। बक्सा काफी बड़ा था। जिसमें शरीर को अच्छी तरह सुलाया गया था। बक्से को इस तरह बन्द किया गया था, कि उसमें हवा तक नहीं जा सकती थी। बक्से को नीचे उतारने के बाद नलिनी कान्त गुप्ता और आन्द्रे मोरिस ने उस पर गुलाब की पँखुड़ियां चढ़ाईं, और फिर समाधि को सीमेंट कंकरीट से बन्द कर दिया गया। इसके बाद दस मिनट ध्यान हुआ।

आकाशवाणी द्वारा अंग्रेजी और तमिल में पूरा विवरण प्रसारित किया गया। ध्यान के बाद पौंण्डिचेरी सरकार, फ्रेंन्च राजदूत आदि की ओर से पुष्प भेंट किये गये, फिर आश्रमवासियों के अतिरिक्त देश-भर से आए लोगों को और साधारण जनता को भी समाधि-दर्शन करने और श्रद्धान्जलि-अर्पण का अवसर दिया गया।

नवम्बर, 2019

सिद्धि दिवस

सन 1926 ई0 श्री अरविन्द के इतिहास में एक महत्तवर्पूण वर्ष है। इसी वर्ष 24 नवम्बर को श्री अरविन्द एकान्त में चले गये। उस दिन एक विशेष अवतरण हुआ जब श्री कृष्ण की चेतना उनके शरीर में उतर आयी और अतिमानसिक सिद्धि का मार्ग खुल गया।

कुछ पहले से ही इस वर्ष आश्रम के जीवन में अनदेखे मगर एक ऐसे परिवर्तन का प्रारम्भ हुआ जो अत्यन्त ही सहजता से सम्पादित होता गया। श्रीमाँ के साथ साधिकाएँ ध्यान के लिए जाने लगीं, पीछे कुछ साधक भी इसमें शामिल होने लगे। धीर-धीरे आश्रम का बाहरी विधान श्रीमाँ की ओर अभिमुख हो रहा था और 24 नवम्बर के बाद श्रीअरविन्द जब बिल्कुल एकान्त में चले गए तब तो आश्रम के संचालन का सारा भार श्रीमाँ के ऊपर ही आ पड़ा।

इस वर्ष श्रीअरविन्द ज्यों-ज्यों लोगों से विलगं, एकान्तनिष्ठ हो रहे थे, लोगों में यह विश्वास घर कर रहा था कि एक ऊँची चेतना का अवतरण होने ही वाला है। वायुमण्डल भी धीरे-धीरे दूसरी तरह का हो रहा था। व्यक्तिगत रुप से लोगों को कई तरह के अनुभव भी हो रहे थे। श्रीअरविन्द जो ध्यान के लिए साधारणतः अपराह्न 4 बजे जाया करते थे, अब कभी-कभी 6 बजे आने लगे। कभी-कभी रात के 8 बजे और एक बार तो वे आधी रात के बाद 2 बजे आये। लगता था उनकी सारी शक्ति एक विशेष प्रयत्न में लगी हुई है। साधकों के साथ सम्बन्ध तो अनिवार्य था ही, फिर भी वे जो प्रयत्न कर रहे थे उसमें उनकी तल्लीनता स्पष्ट थी। कुछ लोगों के लिए यह अत्यन्त ही भयावह बात थी। श्रीअरविन्द उनमें दूर हो रहे थे। जिन्होंने अपने विराट प्रयतन्न से योग की दुर्लभ सिद्धियों को अत्यल्पकाल में ही प्राप्त कर लिया था, वे अब दूर क्यों होने लगे ? वह कौन-सी तपस्या थी, जिसे वे लोगों के सम्पर्क में रहते हुए नहीं कर सकते थे, फिर लोगों की धारणा भी थी कि श्रीअरविन्द का योग एक विश्वयोग संसार से पराङमुखता का योग नहीं है और जब वे अधिक गम्भीर दिखलायी पड़ने लगे, ऐसे लोग भी अधिक शंकालु दीखने लगे। ये लोग संसार की रक्षा अथवा सहायता के सम्बन्ध में अपने विचारों से भरे थे। परन्तु श्रीअरविन्द के योग का मानचित्र बदल रहा था, वह अधिक विशाल होता जा रहा था और इस मानचित्र में मानव संसार से सिमटते चले जा रहे थे। भागवत् संकल्प के इस योग की अपनी महिमा थी।

इसमें प्रकृति की दिव्य चरितार्थता थी, वे मानव के उच्चतम स्वप्नों में बँधे थे उनके लिए यह एक अचिन्त्य बात थी। संसार नहीं जानता था लेकिन वे तो संसार की ही मंगल साधना में तल्लीन थे 'The world unknowing for the world he stood'.

श्रीअरविन्द की यात्रा मात्र चेतना की यात्रा न थी। जीवन में ही सांस्थानिक परिवर्तन की विराट योजना उनके उद्देश्य में शामिल हो चुकी थी। दिव्य चेतना के उच्चतम शिखरों का उनका आरोहण कब का समाप्त हो चुका था ।

सन 1920 ई0 में ही वारीन को लिखे पत्र में उन्होंने लिखा था कि उनका काम था चेतना की उच्चतर भूमिका में अतिमानसिक में मन, प्राण और शरीर को उठा ले जाने का। परन्तु उसकी उपलब्धि आसान नहीं है। 15 वर्ष के बाद अभी मैं अतिमानस के तीन स्तरों में सबसे निचले स्तर तक उठने की चेष्टा कर रहा हूँ और अपनी सारी गतियों को उस स्तर तक उठा ले जाने के लिए प्रयत्नशील हूँ। फिर प्रकाश के अवतरण की चर्चा दूसरे स्थल पर उन्होंने इस प्रकार की थी जड़तत्व के ऊपर के स्तरों में सत्य और प्रकाश को उतार लाने में कठिनाई नहीं हैं। परन्तु सत्य को नीचे निश्चेतन कर उतारने की सच्ची कठिनाई है। इसके लिए प्रकृति के कुछ वर्तमान नियमों में परिवर्तन की आवश्कता है। पहले तो वायुमण्डल को बदल जाना होगा। शक्ति अथवा ज्ञान को प्राप्त कर लेने का यह सवाल नहीं है बल्कि सचमुच यह सवाल है: जड़तत्व में सत्य को उतार लाने का।

श्रीअरविन्द ने आर्य के माध्यम से जो अपना सन्देश संसार को दिया था, उसके बाद भी कई वर्ष बीत चुके थे। साधना अनवरत चल रही थी और अब एक निश्चित मोड़ आ चुका था। श्रीअरविन्द जीवन को भूले न थे भूल भी नहीं सकते थे।

उन्होंने ही तो कहा था, जीवन कोई दूरस्थ शान्त ऊँचा आनन्दमय लोक नहीं जीवन ही हमारे योग का क्षेत्र है। श्रीमाँ के शब्दों में दूर ऊर्ध्व चेतना में जब व्यक्ति होता है तो वह ऊँची चीजों को देखता है, उसका ज्ञान उसे मिलता है। परन्तु वस्तुतः जब वह नीचे जड़तत्व में आता है तो लगता है जैसे बालू में पानी समा रहा हो।

श्रीअरविन्द इसी बालुकाराशि को सींच रहे थे। जड़तत्वों से बने शरीर के ऊपर इसका प्रभाव भी दिखाई पड़ रहा था, श्री अम्बालाल पुराणी ने जब श्रीअरविन्द को आश्रम में दुबारा सन 1921 ई0 में देखा तो वे उनकी स्वर्णिम और गौर कान्ति को देखतर अचकचा गये। श्रीअरविन्द का वर्ण था श्याम और सभी उन्हें बिल्कुल बदले हुए से लगे। श्रीअरविन्द को देखते ही उन्होंने पूछा यह क्या ? तो श्रीअरविन्द भी विनोद की मुद्रा में उनके चेहरे पर बडी दाढ़ी की लक्ष्य कर बोले और यह क्या ?

सन् 1929 ई0 के अगस्त के बाद अवतरण की चर्चा और आशा से वायुमण्डल गम्भीर होने लगा था। कहा जा चुका है कि श्रीअरविन्द का ध्यान के लिए आना भी इधर निर्धारित समय पर नहीं हो रहा था। सभी इस बात को समझ रहे थे कि वे एक विशेष अवतरण की प्रतीक्षा और चेष्टा में है। अतिमानसिक सिद्धि के लिए यह आवश्यक था कि मनोमय चेतना और अतिमानस के बीच उस मध्यस्थ चेतना की चर्चा भी वे करते ही थे जिसका नाम उन्होंने अधिमानस दिया था। यही वह चेतना

है, जो देवों की उद्गम भूमि है सृजन शक्ति अनेकशः धाराओं में यहीं से चलती है। संसार अब जो कुछ भी हैं और इसकी जो कुछ भी ऊँची से ऊँची सम्भावनाएँ हैं, वे सब इसी चेतना से अधिशासित और सृष्ट हैं। एक सत्य नाना शक्तियों में नाना रुपों में यहीं दिखाई पड़ता है अथवा अनुभव होता है। वेदों में वर्णित 'एक सद्विप्राः बहुधा वदन्ति' के अनुभव की यही अपनी भूमि है।

परन्तु रुपान्तरण का जो सन्देश श्रीअरविन्द ने दिया था, वह इससे सम्भव न था। उसके लिए तो अतिमानस का अवतरण ही आवश्यक था। परन्तु इस अवतरण के पहले जो चीज़ आवश्यक थी, वह थी: अधिमानस का यहाँ अवतरण और पार्थिव तत्व में प्रवेश। अधिमानस के शरीर में स्थापित होने से ही अतिमानस के अवतरण के शरीर में स्थापित होने से ही अतिमानस के अवतरण का आधार तैयार हो सकता था। आखिर 24 नवम्बर का दिन आया। श्रीमाँ तो इस अवसर की प्रतीक्षा में थी ही, लोग भी अपनी व्यक्तिगत अनुभूतियों के आधार पर एक विशेष अवतरण की प्रतीक्षा में थे। नवम्बर के प्रारम्भ से ही वायुमण्डल में एक विशेष चाप का अनुभव सभी कर रहे थे। आज सूर्यास्त हो चुका था। लोग अपने-अपने कामों में लगे थे, बहुत से बाहर समुद्र की ओर टहलने चले गये थे। इसी समय श्रीमाँ ने लोगों को बुलावा भेजा।

थोड़ी ही देर में सभी आ गये। बरामदे में श्रीअरविन्द की कुर्सी के पीछे तीन सर्पाकार दानवों का चीनी चित्र काले पर्दे पर लटक रहा था। आज इस चित्र का विशेष अर्थ था। चीन में एक भविष्योक्ति है कि मन, अन्तरिक्ष और पृथ्वी के तीन दानव जब मिलेंगे, तभी सत्य पृथ्वी पर उद्घाटित होगा। आज इस चित्र की सार्थकता थी।

वायुमण्डल एक विचित्र शान्ति से ओत-प्रोत था। लोग अपने माथे पर एक चाप का अनुभव कर रहे थे। हवा में एक शक्ति, एक गम्भीरता व्याप्त थी। इसी बीच दरवाजे से श्रीअरविन्द का इशारा पा कर श्रीमाँ श्रीअरविन्द के दक्षिण पार्श्व में स्टूल पर जा बैठीं। श्रीअरविन्द के वरदहस्त का आशीर्वाद भी उन्हें मिलने लगा। इस प्रकार आशीर्वाद की समाप्ति के बाद भी ध्यान का एक संक्षिप्त क्रम चला। वातावरण वर्णनातीत था। कुछ साधकों का चुपचाप चलने वाला यह आत्मनिवेदन, श्रीअरविन्द और श्रीमाँ की यह मुद्रा, दिव्य प्रेम और करुणा की धारा में साधकों का यह तीर्थ स्थान पार्थिव रंगमंच के वृहद् कोलाहल में एक ऐसी घटना थी जिसकी लघुकाया जीवन के प्राचीमूल में क्षीण अरुण रेखा के समान ही प्रकट हुई। परन्तु दिग्मण्डल में व्याप्त महान्धकार के नाश का इसमें संकेत था। नये सूर्योदय की यह सूचना थी। दत्ता, एक पश्चिम देश की साधिका अभिभूत हो उठीं। वे बोलीं: 'आज भगवान पृथ्वी पर प्रकट हुए हैं।' भौतिक परिमण्डल में यह अधिमानसिक आनन्द चेतना का पदार्पण था। श्री कृष्ण इसी चेतना के अवतार थे। आज वही चेतना श्रीअरविन्द के भौतिक विग्रह में प्रकट हुई। अतिमानस के जड़तत्व में प्रवेश का मार्ग इससे खुल गया।

आश्रम में यह दिवस उसी प्रकार स्मरणीय और पूजित है जिस प्रकार श्री अरविन्द का जन्म दिवस अथवा श्रीमाँ का जन्मदिवस।

पूर्व प्रकाशित श्री अरविन्द कर्मधारा 1981

नवम्बर, 2019

श्रीमाँ के समीप आती भयभीत मृत्यु

1962 में श्रीमाँ के हृदय रोग से पूरी तरह ग्रस्त हो गईं थीं, किन्तु उन्होंने कोई भी दवा उन्हें देने की डॉक्टर को अनुमति नहीं दी थी। महीनों के अपने प्रति प्रयास करो एवं दिव्यशक्ति के प्रयोग से वे स्वत: ही पुनः जीवन की सहज सामान्य अवस्था में लौट आई थीं। उस प्रसंग को पढ़ने एवं उनके दर्शन के पश्चात मुझसे स्वतः स्फूर्त पक्तियाँ प्रस्तुत है:

'उसकी छाया थर-थर काँप रही थी
आज उसने माया से किया था अपने स्वरुप का उत्कर्ष
ओढ़कर दिव्य आत्मा का वस्त्र
वह धीरे-धीरे सीढ़ियाँ चढ़ रही थीं।
उसकी अविजित विराट सत्ता ने पहली बार किया था,
अनुभव भय का कम्पन।
उस भय का जिसे भेजती रही हैं
अनादि कालों से जीवात्माएँ
जिन देहों के प्राणों की बह रही है स्वामिनी एकछत्र,
उनमें से आज कोई नहीं हैं उसका भक्ष्य,
उन सबको तो अविरोध वह ले जाती हैं अपने संग
नहीं सिहरी है रंचभाग, उसमें भय की सिहरन
किन्तु आज उसके अंग भय से कर रहे हैं कंम्पन
आज वह नही लाँघ सकती थी उसके कक्ष के द्वार
नहीं कर सकती थी वहाँ प्रवेश, अनंतता के साथ,
अपने आकस्मिक आगमन के सदमें से नहीं हर सकती थी किसी मासूम के प्राण।
काल-चक्र के नियम का पाकर आदेश वह पहुँची सीढ़ियाँ लाँघकर ,
उस कक्ष के प्रवेश द्वार
और वहाँ पहुँच उसनें देखा हठात्
अनन्त ज्योतिर्मय रुप की स्वामिनी ,
दिव्य जननी माता अदिति,

आशीषों के मंगल सिंहासन पर
प्रखर सूर्य रश्मियों-सी थी विराजमान,
समस्त कक्ष जगमग था, विलक्षण प्रेम की ऊष्मा से,
देह-मन-प्राण की सीमाएँ जीवन कर चुका था अतिक्रमण।
मानों वहाँ सत्य-चेतना-आनन्द का हो गया था संगम ।
और
दूर-सुदूर के अदृश्य लोक से चमक रहे थे अमृत के बिन्दु कण-कण
दर्शन की उस आभा से

अनुभूति के क्षण

(तुम और मैं)

तुम ज्योति-पुंज, मैं तिमिर गहन;
तुम चिद्विलास, मैं चिर उन्मन;
तुम सुधा-सिंधु, मैं क्षुद्र बिन्दु;
मैं दलित-दीन, तुम दीनबन्धु;

चिर मुखर किन्तु हो सदा मौन,
चिर परिचित हो पर कौन-कौन
का प्रश्न जगाते हो अन्तर में;
तुम अम्बर में नित ज्योतिर्मान,
मैं डूब रहा भव-सागर में।
तुम चिर-नवीन,
स्वाधीन, सदा स्वच्छन्द-प्राण;
मैं जन्म-मरण की कारा में हूँ बंद प्राण !

यह गगन तुम्हारा है आंगन,
विस्तीर्ण सिंधु है शांत शयन,
ले रहे सांस बन त्रिगुण पवन,
उषा की शांत सरल चितवन-
भर देती नव प्राण सृष्टि में;
करते नित आनंद-वृष्टि तुम!
पर बढ़ती पल-पल प्यास विकल,
करती है पागल प्राण सकल।
सागर से लेकर घट-घट में,
बहुरंगी नभ के घूंघट में-
तुम दिखलाते अपना श्री-मुख,

करते जग-शीतल, देते सुख।
मैं ओस-बिन्दु-सा धरती पर हूँ ढुलक रहा,
जो चल द्रुम-दल पर पल दो पल को पुलक रहा;
क्या-लक्ष्य मेरा है धरा-धूल ?
यों मसलो मत सुकुमार फूल!
मैं मान गया तुम हो अनादि, नश्वर हूँ मैं;
तुम गूंज रहे बन अमर नाद, लघु स्वर हूँ मैं;
तुम पूर्ण और मैं सदा रिक्त,
पर तुममें ही नित लगा चित्त।

जब इतने हैं सम्बन्ध प्राण, फिर क्यों विस्तृत कर दिया मुझे?
मैं नहीं जान पाता क्यों फिर चेतनता का वर दिया मुझे?

मैं विनत हूँ आज तन से, प्राण मन से,
दे सको तो दीन को बस एक ही वरदान दो;
छीन लो अभिलाष, मेरी आस, जीवन छीन लो
एक पल के लिए केवल मुझे दर्शन दान दो ।
लो छीन आज मेरा 'मैं' तुम
अपने में ही कर लो लय तुम।

सुरेशचंद्र त्यागी

कर्मयोग

अपने भीतर भगवान के साथ अपने चहुँ ओर वैश्विक ईश्वरीय सत्ता तथा अपने ऊपर परात्पर प्रभु के साथ एकता एवं गहन एकात्म होकर कार्य करना तथा पृथकतावादी मन में बंद न रहना, उसके अज्ञानजनित आदेशों एवं संकीर्ण संकेतों का दास न बनना – यह है कर्मयोग ।

दिव्य आज्ञा, शाश्वत इच्छा, परात्पर से प्रवर्तित वैश्व-प्रेरणा के अनुसार कर्म करना, अहंकार, आवश्यकता,आवेश, आवेग तथा कामना के चाबुक तले न रहना, मानसिक-प्राणिक या भौतिक पसन्दों या नापसन्दों की चुभन से प्रेरित होकर नहीं, अपितु सत्य से प्रेरित होकर कर्म करना, यही कर्म- योग है।

मानव जनित अज्ञान में न बने रहना, उसके द्वारा कार्यकलाप न करना, दिव्य ज्ञान में जो व्यक्तिगत स्वभाव (Nature) तथा वैश्विक शक्तियों के विषय में सचेतन एवं जागृत है उस परात्पर नियम के अनुकूल होकर उसमें जीवन-यापन करना एवं कर्म करते रहना, यही कर्म-योग है।

दिव्य, अनन्त, असीम एवं प्रकाशवान वैश्विक चेतना में जीना एवं क्रिया करना, उसकी ओर सर्वदा खुले रहना, पुरानी संकीर्णताओं में आबद्ध होकर अन्धकार में न टटोलते रहना, तथा ठोकरें न खाते रहना, यही कर्मयोग है।

जो भी जीवन की वर्तमान क्षुद्रताओं से ऊब गया है, जो भी भावी महानताओं का अभीप्सु है, जिस किसी को भी अपने भीतर, अपने ऊपर, अपने चहुँ ओर उस 'एकमेव' परमपुरुष की झलक मिली है, वह उसकी पुकार सुने, उस पथ का अनुसरण करे। मार्ग कठिन है, श्रम दुरुह है, दीर्घ है लेकिन उसका पुरस्कार है एक कल्पनातीत महिमा में, अथाह आनन्द में एवं अनन्त विस्तार में प्रवेश एवं निवास।

अपने अन्दर छुपे या अपार्थिव देह में निवास करने वाले परम बन्धु एवं पथ-प्रदर्शक को पहचानो, उसकी आवाज पर ध्यान दो और वह जिस ओर संकेत करे उसी ओर बढ़े चलो। अन्त के मुहाने पर वह प्रकाश है जो कभी निराश नहीं करता, वह सत्य है जिसमें कोई धोखा नहीं है, वह शक्ति है जो न तो कभी भटकती हैं, न ठोकरें खाती है, वहाँ विस्तृत स्वाधीनता एवं अनिवर्चनीय आनन्द है!

उस पार के स्वर्ग, महान एवं अद्भुत हैं लेकिन उनसे भी महान और अद्भुत हैं वे स्वर्ग जो तुम्हारे भीतर हैं। वे नन्दन कानन 'दिव्यकर्मी' की प्रतीक्षा में हैं।

- श्रीअरविन्द

पूर्णयोग की प्रक्रिया

पूर्णयोग की प्रक्रिया में तीन अवस्थाएँ आती हैं, निश्चय ही वे तीव्र रूप में भिन्न या पृथक्-पृथक् तो नहीं हैं, पर किसी अंश में क्रमिक अवश्य हैं। सबसे पहले हमें अपने अहंभाव से ऊपर उठने और भगवान् के साथ सम्बन्ध स्थापित करने का यत्न करना होगा जिससे कि हम कम-से-कम, योग में दीक्षित होकर उसके अधिकारी बन सकें। उसके बाद यह आवश्यक है कि जो परब्रह्म हमसे अतीत है और जिसके साथ हमने अन्तर्मिलन प्राप्त कर लिया है उसे हम अपने अन्दर ग्रहण करें, ताकि वह हमारी सम्पूर्ण सचेतन सत्ता का रूपान्तरण कर सके। अन्त में, हमें अपनी रूपान्तरित मानवता का संसार में भगवान के केन्द्र के रूप में उपयोग करना होगा। जब तक भगवान के साथ सम्बन्ध यथेष्ट मात्रा में स्थापित नहीं हो जाता, जब तक कुछ-न-कुछ सतत तादात्म्य, सायुज्य प्राप्त नहीं हो जाता, तब तक यह साधारणतया व्यक्तिगत प्रयत्न का अंग अवश्य ही प्रधान रहता है। परन्तु जैसे-वैसे साधक निश्चित रूप में इस बात से सचेतन होता जाता है कि उसकी शक्ति से भिन्न कोई शक्ति है, जो उसके अहंभावपूर्ण प्रयत्न और सामर्थ्य से परे है और उसके अन्दर काम कर रही है और वह उत्तरोत्तर उस परम शक्ति के प्रति अपने आपका उत्सर्ग करना सीखता जाता है और अपने योग का कार्यभार भी उसे सौंप देता है । अन्त में उसका अपना संकल्प और सामर्थ्य उच्चतर शक्ति के साथ एक हो जाते है; वह उन्हें भागवत संकल्प और उनकी परात्पर तथा विश्वव्यापिनी शक्ति में निमज्जित कर देता है। तब से वह देखने लगता है कि यह शक्ति उसकी मानसिक, प्राणिक एवं शारीरिक सत्ता के आवश्यक रूपान्तरण का सूत्र सञ्चालन ऐसे न्यायपूर्ण ज्ञान और दूरदर्शी क्षमता के साथ कर रही है, जो उत्कण्ठित और स्वार्थरत अहं के सामर्थ्य से बाहर की वस्तु है। जब यह तादात्म्य और आत्मनिमज्जन पूर्ण हो जाते हैं, तब संसार में भगवान का केन्द्र तैयार हो जाता है। विशुद्ध, मुक्त, सुनम्य और ज्ञानदीप्त होकर वह केन्द्र मानवता या अतिमानवता के विस्तीर्णतर योग में, अर्थात्, इस पृथ्वी की आध्यात्मिक प्रगति या इसके रूपान्तरण के योग में, सर्वोच्च शक्ति की साक्षात् क्रिया के लिए साधन के तौर पर उपयोग में आने लग सकता है।

-'योग-समन्वय',पृ. 48-49

-श्रीअरविन्द

श्रीअरविन्द: श्रीमाँ के विषय में

केवल एक ही दिव्य शक्ति है जो विश्व में भी कार्य करती है और व्यक्ति में भी। इसके बावजूद वह विश्व और व्यक्ति दोनों से परे है। श्री माँ इन सबकी प्रतिनिधि हैं किन्तु वे यहाँ शरीर में रहकर कुछ ऐसा तत्व उतारने के लिए कार्य कर रही हैं ,जो अभी तक इस स्थूल जगत में अभिव्यक्त नहीं हुआ है। अर्थात वह तत्व, जो यहाँ के जीवन को रुपान्तरित कर सके। अतः हमें श्रीमाँ को इस उदेश्य की पूर्ति हेतु कार्य करने वाली शक्ति समझना चाहिए। श्रीमाँ शरीर में रहते हुए भी अपनी सम्पूर्ण चेतना में भगवान के सभी रुपों के साथ अपना एकत्व बनाये हुए हैं।

श्रीमाँ चित्त शांन्ति के रुप में स्वयं भगवान ही हैं। अपने आपको सदैव श्रीमाँ की ओर खुला रखो; अपने को उनके स्पर्श के प्रति नमनीय बनाए रखो।

श्रीमाँ की सतत उपस्थिति की अनुभूति अभ्यास के द्वारा आती है। साधना में सफलता पाने के लिए भगवद् कृपा अत्यन्त आवश्यक है और अभ्यास ही वह तथ्य है, जो भगवद्-कृपा शक्ति के अवतरण को सम्भव बनाता है। वे ही श्रीमाँ के सच्चे बालक हैं, जो उनकी ओर खुले हुये हैं, उनकी अन्तर चेतना में उनके निकट हैं। अपने और श्रीमाँ की कृपा शक्ति के बीच किसी भी चीज को बाधक मत बनने दो; सच्ची और सतत अन्तः प्रेरणा के साथ उनसे जुड़े रहो। जितना अधिक श्रीमाँ के साथ एकत्व बढ़ता जाएगा, उतनी ही तुम्हारी साधना सुदृढ़ होती जाएगी। पूर्ण रुप से उन्हीं पर भरोसा रखना, लक्ष्य की ओर सतत बढ़ते रहने का समुचित मनोभाव है।

श्रीमाँ की कृपा एवं सहायता उन व्यक्तियों को सर्वदा प्राप्त होती है जो उसे ग्रहण करने की अभीप्सा रखते हैं और बिना विचलित हुए सत्यनिष्ठा से अपने समर्पण में संलग्न रहते हैं।

श्रीमां के प्रति उद्घाटन और समर्पण

योगसाधना करने का अर्थ ही है: सब प्रकार की आसक्तियों को जीतने ओर एकमात्र भगवान की ओर मुड़ जाने का संकल्प करना। योग की सबसे प्रधान बात है: पग-पग पर भागवत कृपा पर विश्वास रखना, निरंतर अपने विचार को भगवान की ओर नियोजित करना और जब तक अपनी सत्ता उदघाटित न हो जाए और आधार के अंदर कार्य करती हुई श्रीमाँ कि शक्ति का अनुभव न हो सके तब तक अपने-आपको समर्पित करते रहना।

खुले रहने का अर्थ है: श्रीमाँ की ओर महज इस तरह मुड़े रहना कि उनकी शक्ति तुम्हारे अंदर कार्य कर सके और कोई भी चीज उसके कार्य को अस्वीकार न करे अथवा बाधा न पहुंचाए। अगर मन अपने निजी विचारों में ही बंद रहे और उसे अपने अंदर ज्योति और सत्य को ले आने देना अस्वीकार करे,अगर प्राण अपनी वासनाओं से चिपका रहे और जिस सत्य के प्रारंभ को और जिन सब सत्य प्रवृत्तियोंको श्रीमाँ की शक्ति ले आती है उन्हें आने न दे, अगर शरीर अपनी इच्छाओं अभ्यासों और तामसिकता में आबद्ध हो और ज्योति और शक्ति को अपने अंदर प्रवेश और कार्य न करने दे तो इसका अर्थ है कि हम खुले नहीं हैं। यह संभव नहीं है कि हम एकदम आरंभ से ही अपनी समस्त गतिवधियों में पूर्ण रुप से उद्घाटित हो जाएं पर प्रत्येक भाग में एक केंद्रीय उद्घाटन और प्रत्येक अंग में (केवल मन में ही नहीं) एकमात्र श्रीमाँ की 'क्रिया' को ही होनें देने की प्रबल अभीप्सा या संकल्प अवश्य होना चाहिये, तब बाकी चीजें धीरे-धीरे पूरी कर दी जाएँगी ।

श्रीमाँ की ओर खुलने के लिए मन को स्थिर करना

हाँ! मन को स्थिर कर देने पर तुम श्रीमाँ को पुकारने तथा उनकी ओर खुलने में समर्थ होगे। शांतिदायी प्रभाव चैत्य पुरुष का स्पर्श था। वह उन स्पर्शो मे से एक स्पर्श था जो चैत्य उदघाटन की तैयारी करते हैं। उस उदघाटन की जो अपने साथ आंतरिक शांति, प्रेम और आनंद का उपहार ले आता है।

श्रीमाँ की शक्ति की ओर अपने आप को खुला रखो, पर सब प्रकार की शक्तियों पर विश्वास न करो। जब तुम आगे बढ़ोगे तब, अगर तुम सीधे रास्ते को पकड़े रहो तो, तुम एक ऐसे समय में जा पहुंचोगे जब चैत्य पुरुष अधिक प्रमुखता के साथ क्रियाशील हो जाएगा और ऊपर से आने वाली दिव्य

ज्योति अधिक शुद्धता तथा प्रबलता के साथ अधिकार जमा लेगी जिससे कि मानसिक तथा प्राणिक रचनाओं के सच्ची अनुभूति के साथ मिलजुल जाने की संभावना कम हो जाएगी । जैसा कि मैनें तुमसे कहा है ,ये न तो अतिमानसिक शक्तियाँ हैं न हो ही सकती हैं यह तो तैयारी का एक कार्य है जो एक भावी योगसिद्धि के लिए सारी चीजों को बस तैयार कर रहा है।

श्रीमाँ को आत्मसमर्पण करने की आवश्कता

अगर तुम आत्मसमर्पण न करो तो फिर उनकी ओर खुले रहने का कोई विशेष आध्यात्मिक अर्थ नहीं है। आत्मदान या समर्पण की मांग उन लोगों से की जाती है जो इस योग का अभ्यास करते हैं, क्योंकि सत्ता की ओर से ऐसा क्रमबद्ध समर्पण हुए बिना किसी और लक्ष्य के समीप पहुंचना एकदम असंभव है।

उनकी ओर खुले रहने का अर्थ है: अपने अंदर कार्य करने के लिए उनकी शक्ति का आवाहन करना और अगर तुम उनको समर्पण नहीं करते तो इसका तात्पर्य हो जाता है अपने अंदर उनकी शक्ति को एकदम कार्य न करने देना अथवा केवल इस शर्त पर कार्य करने देना कि वह उसी तरह कार्य करेगी जिस तरह से तुम चाहते हो। वह अपने निजी तरीके से कार्य नहीं करेगी जो कि दिव्य सत्य का पथ है। इस तरह का सुझाव साधारणतया किसी विरोधी शक्ति के यहाँ से आता हैं अथवा मन या प्राण के किसी अहंकार पूर्ण अंश से आता है जो भागवत कृपा या शक्ति को चाहता है । पर चाहता केवल इसलिये कि वह किसी अपने निजी उद्देश्य के लिए उसका उपयोग करे और जो भागवत उद्देश्य के लिए जीवनयापन करने के लिए इच्छुक नहीं होता वह जीवनयापन करने के लिये इच्छुक नहीं होता, वह इच्छुक होता है जो कुछ वह ले सकें वह सब भगवान से ले लेने के लिए पर भगवान को स्वयं अपने आपको दे देने के लिए नहीं। अंतरात्मा, हमारा सच्चा स्वरुप,इसके विपरीत,भगवान की ओर मुड़ जाता है और आत्मसमर्पण करने के लिये वह केवल इच्छुक ही नहीं होता बल्कि उसके लिये उत्सुक होता है और उससे उसे प्रसन्नता होती है।

इस योग में यह माना जाता हैं कि प्रत्येक आदमी हर तरह की मानसिक आदर्शवादी संस्कृति से परे चला जायगा। भावनाएं और आदर्श मन से संबंध रखते हैं और वे केवल अर्द्ध-सत्य है; मन भी बहुत बार एक आदर्श रख लेने से ही संतुष्ट रहता हैं आदर्श बनाने के सुख में डूबा रहता है,जबकि प्राण बराबर ज्यों का त्यों अरुपांतरित अवस्था में बना रहता हैं अथवा केवल थोड़ा सा और अधिकांश मे ऊपर से देखने में ही परिवर्तित होता है। अध्यात्म का साधक उपलब्धि की चेष्टा से विरत होकर केवल आदर्श बनाने की ओर ही नहीं मुड़ जाता। आदर्श बनाना नहीं, बल्कि दिव्य सत्य को उपलब्ध करना

उसका बराबर ही लक्ष्य होता है, चाहे जीवन से परे जाकर हो या जीवन में ही रहकर हो- और अंतिम अवस्था में यह आवश्यक है कि मन और प्राण को रुपांतरित किया जाय और यह रुपांतरण भागवती शक्ति, श्रीमाँ के कार्य के प्रति आत्मसमर्पण किये बिना नहीं हो सकता।

निराकार की खोज करना उन लोगों का पथ है जो जीवन से अलग होना चाहते हैं। परन्तु साधारणतया वे चेष्ठा करते हैं: अपने निजी प्रयास के बल पर वे किसी श्रेष्ठतर शक्ति की ओर अपने आपको खोलकर या आत्मसमर्पण के पथ पर से नहीं चलते; क्योंकि निराकार ऐसी चीज़ नहीं है जो पथ दिखाती है या सहायता करती है बल्कि ऐसी चीज़ है जो प्राप्त की जाती है और यह प्रत्येक मनुष्य को अपनी प्रकृति के पथ दिखाती है या सहायता करती है बल्कि ऐसी चीज़े हैं जो प्राप्त की जाती हैं और यह प्रत्येक मनुष्य को अपनी प्रकृति के पथ और क्षमता के अनुसार उसे प्राप्त करने के लिए छोड़ देती है। दूसरी ओर, श्रीमां की ओर अपने आप को खोलकर और उन्हें आत्मसमर्पण करके मनुष्य निराकार को भी प्राप्त कर सकता है और सत्य के दूसरे प्रत्येक स्वरुप को भी प्राप्त कर सकता है।

अवश्य ही आत्मसमर्पण कर्मोत्तरशील होना चाहिये। कोई भी आदमी आरंभ से ही पूर्ण आत्मसमर्पण नहीं करता है और इसलिये यह बिलकुल स्वाभाविक ही है कि जब मनुष्य अपने भीतर ताकता है तब वह वहाँ उसका अभाव पाता है। पर कोई कारण नहीं है कि आत्मसमर्पण सिद्धातं ही न स्वीकार किया जाय और धीर स्थित रुप से एक-एक स्तर ,एक-एक क्षेत्र में क्रमशः प्रकृति के सभी अंगों में उसे प्रयुक्त करते हुए ,उसे व्यवहार में सिद्ध न किया जाय।

आत्मसमर्पण करने का यथार्थ भाव

साधक से प्रयास करने की आशा की जाती है: वह है अभीप्सा,त्याग और आत्मसमर्पण । अगर ये तीनों चीज़ें की जाएं तो फिर बाकी चीज़ें श्रीमाँ की कृपा से और तुम्हारे अंदर उनकी शक्ति की क्रिया के कारण अपने आप ही आयेंगी परतुं इन तीनों में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण हैं आत्मसमर्पण और उसका प्रथम आवश्यक स्वरुप है कठिनाई के समय विश्वास और भरोसा और धैर्य रखना। यह कोई नियम नहीं है कि विश्वास और भरोसा तभी रह सकता है जबकि अभीप्सा वहाँ हो। बल्कि उसके विपरीत जब कि तामसिकता के दबाव के कारण अभीप्सा नहीं होती तब भी विश्वास और भरोसा और धैर्य विद्यमान रह सकते हैं। यदि अभीप्सा के प्रसुप्त रहने पर विश्वास और धैर्य साथ छोड़ दें तो उसका मतलब यह होता है कि साधक एकमात्र अपने निजी प्रयास पर ही निर्भर करता है, उसका अर्थ होता है: 'ओह, मेरी अभीप्सा असफल हो रही है, मेरे लिए अब कोई आशा नहीं। मेरी अभीप्सा असफल हो गई, इसलिये भला श्रीमाँ क्या कर सकती हैं?' इसके विपरीत साधक को यह अनुभव होना चाहिये

कि कोई बात नहीं, मेरी अभीप्सा फिर से वापस आयेगी। इस बीच मैं जानता हूँ कि जब मैं उन्हें अनुभव नहीं करता हूँ, तब भी श्रीमाँ मेरे साथ हैं। वह मुझे अंधकार पूर्ण समय के भीतर से भी उठा ले जाएंगी। यही पूर्णतः यथार्थ भाव है उनका अवसाद कुछ भी नहीं कर सकता। अगर अवसाद आता भी है तो उसे किंकर्त्तव्यविमूढ़ होकर वापस लौट जाना पड़ता है।

यह चीज तामसिक आत्मसमर्पण नहीं है। तामसिक समर्पण उसे कहते हैं जब मनुष्य यह कहता है कि ' मैं कुछ भी नहीं करुंगा, श्रीमाँ सब कुछ कर दें। अभीप्सा, त्याग और आत्ममर्पण भी आवश्यक नहीं है। वही यह सब भी मेरे अंदर ला दें। इन दोनों भावों में बहुत बड़ा अंतर है। एक भाव तो है उस पीछे हटने वाले का जो कुछ भी करना नहीं चाहता और दूसरा है उस साधक का जो अपनी पूर्ण शक्ति लगाकर कार्य करता है, पर जब कुछ समय के लिए अकर्मण्यता में जा गिरता है और चीजें विपरीत हो जाती हैं तब भी वह सब चीजों के पीछे विद्यमान श्रीमां की शक्ति और उपस्थिति में अपना विश्वास बराबर बनाये रखता है और उस विश्वास के द्वारा विरोधी शक्ति को चकमें में डाल देता है और साधना की क्रिया को फिर वापस ले आता है।

श्रीमाँ के प्रति सच्चा समर्पण

अगर साधना में तुम प्रगति करना चाहते हो तो यह आवश्यक है कि जिस समर्पण की बात तुम करते हो उसे सरल,सच्चा और पूर्ण बनाओ। यह तब तक नहीं किया जा सकता जब तक कि तुम अपनी वासनाओं को अपनी आध्यात्मिक अभीप्सा के साथ मिलाते हो । यह तब-तक नहीं किया जा सकता जब तक कि तुम परिवार,संतान तथा अन्य किसी चीज या मनुष्य के प्रति अपनी प्राणगत आसक्ति को पोसे रखते हो। अगर तुम्हें यह योग करना है तो तुम्हें बस एक ही कामना और अभीप्सा ,आध्यात्मिक सत्य को ग्रहण करने और उसे अपने सभी विचारों ,अनुभवों, क्रियाओं और प्रकृति के अंदर अभिव्यक्त करने की कामना और अभीप्सा रखनी चाहिये। तुम्हें किसी के साथ किसी प्रकार का संबंध बनाने के लिए लालायित नहीं होना चाहिये। दूसरों के साथ साधक के संबंध उसके भीतर से, जब वह सत्य-चेतना प्राप्त कर लेता है और ज्योति में निवास करता है तब उत्पन्न होने चाहिये । वे संबध उसके भीतर भगवती माता की शक्ति और इच्छा के द्वारा, दिव्य जीवन और दिव्य कर्म के लिये आवश्यक अतिमानसिक सत्य के अनुसार निश्चित होने चाहिये। वे कभी उसके मन और उसकी प्राणगत वासनाओं के द्वारा निश्चित नहीं होने चाहिये।

इस बात को तुम्हें अवश्य याद करना होगा। तुम्हारा निम्नतर प्राण-पुरुष आसक्तियों और संस्कारों से तथा कामना की अपवित्र गतिविधियों से बराबर भरा रहा और तुम्हारा बाहरी भौतिक मन

अपने अज्ञानपूर्ण विचारों और आदतों को झाड़ फेंकने में तथा सत्य की ओर खुल जाने में असमर्थ रहा। यही कारण था कि तुम उन्नति करनें में असमर्थ रहे, क्योंकि तुम बराबर ही एक ऐसी चीज़ और ऐसी गतियों कों बनाये रखते थे कि जिन्हें रखने देना मंजूर नहीं किया जा सकता था। कारण ? दिव्य जीवन में जो कुछ स्थापित करने की आवश्कता है उसके ठीक विपरीत ये सब चीजें थीं। एकमात्र श्रीमां ही तुम्हें इन सब चीज़ों से मुक्त कर सकती हैं। अगर तुम सचमुच में ऐसा चाहो,केवल अपने चैत्य पुरुष ही नहीं बल्कि अपने भौतिक मन और अपनी समस्त प्राणिक प्रकृति में भी इसे चाहो। इस चाह का लक्ष्य यह होगा कि तुम अपनी व्यक्तिगत धारणाओं,आसक्तियों या कामनाओं को अब और पोसे नहीं रखोगे या उन पर जोर नहीं दोगे और चाहे दूरी जितनी हो और तुम चाहे जो भी हो तुम अपने आपको खुला हुआ और श्रीमाँ की शक्ति और उपस्थिति को अपने साथ और अपने अंदर कार्य करते हुए अनुभव करोगे और संतुष्ट ,धीर-स्थिर, विश्वास से भरपूर बने रहोगे और किसी चीज का अभाव नहीं अनुभव करोगे और बराबर ही श्रीमाँ की इच्छा की प्रतीक्षा करोगे।

श्रीअरविन्द के पत्रों से

धन्य अवनि!

श्रद्धांजलि अर्पित करता जन, हे मनुष्यता के उन्नायक,
जग-जीवन के महायज्ञ में अतिमानस के नव पावक!
लोक अभीप्सा की आहुति पा स्वर्ग शिखा से उठे प्रज्ज्वलित!
देव धरा के अंधकार को स्वर्ग प्रात में करने दीपित!
महाकाल औ महादिशा ज्यों सहम उठे छवि देख अलौकिक,
रुपान्तरित हुए विमुग्ध त्रिभुवन भौतिक,मानस आध्यात्मिक!
निखिल व्यक्त अव्यक्त,सकल सीमा असीमा लय हुए विमोहित
पुनः देव में स्वयं परम को देख दिव्य तन मन में मूर्तित!
जीवन मन के मान गल गए ,मिटीं पूर्णताएँ अपूर्ण बन,
अल्प मनुज के स्वल्प राज्य घुल गए कुहासे-से उर के घन!
अतिमानस के ज्वलित स्वर्ण दर्पण में सहज विलोक प्रतिफलित
शुभ्र भागवत जीवन का भू-स्वर्गः अतीन्द्रिय इंद्रिय शोभित!
धन्य अवनि,अवतरित हुए जो तुम अतिमानस लोक विधायक,
जन-मन के चिर कुरुक्षेत्र के युग सारथि, क्रम में अतिनायक!

-सुमित्रानन्दन पंत

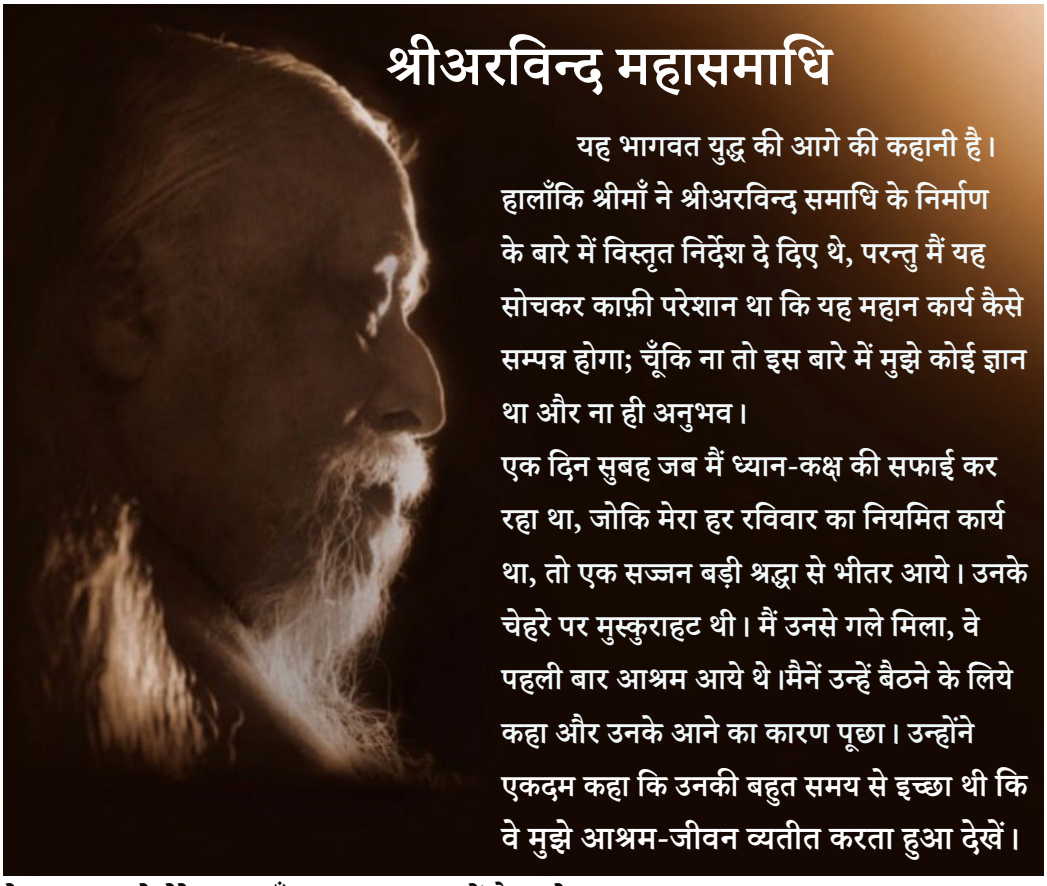

श्रीअरविन्द महासमाधि

यह भागवत युद्ध की आगे की कहानी है। हालाँकि श्रीमाँ ने श्रीअरविन्द समाधि के निर्माण के बारे में विस्तृत निर्देश दे दिए थे, परन्तु मैं यह सोचकर काफ़ी परेशान था कि यह महान कार्य कैसे सम्पन्न होगा; चूँकि ना तो इस बारे में मुझे कोई ज्ञान था और ना ही अनुभव।

एक दिन सुबह जब मैं ध्यान-कक्ष की सफाई कर रहा था, जोकि मेरा हर रविवार का नियमित कार्य था, तो एक सज्जन बड़ी श्रद्धा से भीतर आये। उनके चेहरे पर मुस्कुराहट थी। मैं उनसे गले मिला, वे पहली बार आश्रम आये थे।मैनें उन्हें बैठने के लिये कहा और उनके आने का कारण पूछा। उन्होंने एकदम कहा कि उनकी बहुत समय से इच्छा थी कि वे मुझे आश्रम-जीवन व्यतीत करता हुआ देखें।

ऐसा कहकर वे मेरे पास आँख बन्दकर ध्यान में बैठ गये।

यह सज्जन मेरे मित्र थे जो कि सी. पी.डब्ल्यू. डी. में काम करते थे। मैं व्यापारिक संस्थान में था। हमने दिल्ली में अपने जीवन की शुरुआत करीबन साथ-साथ ही की थी। वे केवल दसवीं पास थे और अनुसूचित जाति के थे। उन्होंने नौकरी की शुरुआत सी.पी.डब्ल्यू.डी.में फोरमैन से की थी।मैं सी.पी.डब्ल्यू.डी.में उन दिनों चूना भेजा करता था और उनके साथ मेरा घनिष्ठ और लम्बा सम्पर्क था। उनके पास इंजीनियरिंग की डिग्री या योग्यता तो नहीं थी परन्तु अपने कार्य को पूरी लगन से करने के कारण वे सुपरिटेण्डेंट इंजीनियर के पद पर पहुँच गये थे। यह एक बड़ी उपलब्धि थी। मैनें उन्हें सच्चाई ,लगन व संजीदगी से कार्य करने के कारण हमेशा सम्मान व प्यार दिया था। उनका नाम पूरनचन्द्र था, परन्तु अंग्रेजी सरकार ने उनकी ईमानदारी व कार्य में लगन के कारण उन्हें राय साहब की उपाधि से विभूषित किया था।

वे ध्यान -कक्ष में अपने शरीर को सीधा रखे हुए दो घण्टे से भी ज्यादा समय तक बैठे रहे। इससे मुझे और भी आश्चर्य हुआ। जब उनका ध्यान टूटा तो मैनें उनसे पूछा कि उन्होनें ध्यान करना

कहाँ से सीखा ? क्योंकि मैं तो कभी सोच भी नहीं सकता था कि सरकारी नौकरी खासकर सी. पी. डब्ल्यू. डी. में काम करने वाले भी कभी ध्यान ,साधना व समाधि जैसी चीजों के प्रति समर्पित हो सकते हैं ? उन्होंने मुझसे कहा कि वे रोजाना सबेरे जल्दी उठकर अपने घर में कई घण्टों तक ध्यान करते हैं। मुझे यह सब जानकर बहुत खुशी हुई।

अब मैनें उन्हें बताया कि भगवान ने मेरी मुसीबत सुलझाने के लिये उन्हें यहाँ भेजा है। मैनें उन्हें वे नक्शे आदि दिखाए जो श्रीमाँ ने मेरे पास भेजे थे।

उन्होंनें देखते ही एकदम कहा कि उनका तो काम यही था और दिल्ली में संगमरमर के सारे स्मारक बनाने का कार्य उनकी देखरेख में ही हुआ था।

उन्होंने मुझे विश्वास दिलाया कि समाधि बनाने की जिम्मेदारी शुरू से आखिर तक वे अपने ऊपर ले लेंगे। क्या जादू, क्या चमत्कार था! उस समय उनके हाथ में सुप्रीम कोर्ट बनाने का कार्य था। उसी समय उन्होनें सारे नक्शे आदि ले लिये और जयपुर (राजस्थान) के पास मकराना से कुछ खास लोगों को बुलाया जो इस तरह के संगमरमर के स्मारक आदि बनाने का काम किया करते थे और जिनको वह जानते थे और जिन पर उनको विश्वास था। उन्होंने उन लोगों को पूरी जानकारी और निर्देश दे दिये और उनके साथ मज़दूरी,शर्तें, काम समाप्त करने का समय आदि भी तय कर दिया।

इसी बीच मेरे पास संगमरमर के विभिन्न प्रकार के पत्थरों के नमूने आने लगे जिन्हें मैनें तुरन्त श्रीमाँ के पास भेज दिया और श्रीमाँ ने जो पत्थर चुना, उसे शीघ्रता से राय साहब पूरनचन्द्र के पास भेज दिया। सारा इन्तज़ाम इतना अच्छा था कि तीन महीने में पूरी समाधि के लिये विभिन्न आकृति के पत्थर व समाधि बनाने के लिये कारीगर आ गये। समाधि बनाने का कार्य राय पूरनचन्द की देख रेख व निर्दशन में एक महीनें में ही पूरा हो गया।

समाधि के बीचों बीच एक वर्गाकर पत्थर लगाना था। जो काफ़ी भारी था लगभग 27 मन वज़न का हो सकता था। उसको एक क्रेन की सहायता से उठाकर योग्य और कुशल कारीगरों की मदद से रखा गया था। ये कारीगर सुप्रीम कोर्ट की इमारत बना रहे थे और वहीं से इन्हें लाया गया था।

जब यह समाधि पूरी तरह से तैयार हो गई तो अचानक ही मैनें देखा कि श्री अरविन्द के चिह्न (Symbol) को वर्गाकार पत्थर पर चारों कोनों में ठीक से नहीं तराशा गया है। यह देखकर मुझे धक्का लगा। अब ना तो उस वर्गाकार पत्थर को निकाला जा सकता था और ना ही इस पर चिह्न को दुबारा तराशा जा सकता था क्योंकि इस वर्गाकार पत्थर को जमीन में दो फुट तक सीमेंट व कंक्रीट में दबा दिया गया था। मैनें सोचा कि मेरी सारी मेहनत पर पानी फिर गया, क्योंकि इस वर्गाकार पत्थर को किसी भी हालत में बदलना ही था जो कि एक कठिन और बहुत मुस्किल काम था। मेरी समझ

में नहीं आ रहा था कि यह सब कैसे होगा। दूसरे दिन सुबह यह बात मैंने राय साहब पूरनचन्द जी को समझाई। उन्होंने मुझे सांत्वना और विश्वास दिलाते हुये कहा कि इस वर्गाकार पत्थर को दो टुकड़ों में तोड़कर, खोदकर निकाला जा सकता है और फिर सही नापवाला नया वर्गाकार पत्थर श्रीअरविन्द के प्रमाणिक चिह्न के साथ मकराना में दुबारा जल्दी से जल्दी तैयार कराने की कोशिश करेंगे।

इस गड़बड़ी का कारण बाद में मालूम हुआ दरअसल मकराना के कारीगरों ने उत्साह में आकर खुद अपनी कल्पनाओं से व अपना दिमाग लगाकर इस चिह्न को बहुत ही ख़ुबसूरत बनाने की कोशिश की थी, परन्तु वे यह नहीं जानते थे कि चिह्न का अपना -पराभौतिक अर्थ व शक्ति है जिसे किसी भी हालत में नहीं बदलना चाहिए था। मेरे मन की परेशानी व हृदय की पुकार श्रीमाँ तक पहुँच गई।

जब हम समाधि के पास खड़े थे तभी माताजी का एक लम्बा टेलीग्राम मुझे मिला जिसमें लिखा था कि , 'श्रीअरविन्द के अवशेष वर्गाकार पत्थर के ऊपर कमल में ना रखे जाकर वर्गाकार पत्थर के भीतर रखे जाएँ।' माताजी का यह निर्देश पाते ही मेरी चिन्ता व परेशानियाँ खत्म हो गई क्योंकि अब किसी भी हालत में वर्गाकार पत्थर को तोड़कर निकलना ही था ताकि अवशेषों को उसके अन्दर रखा जा सके।तभी वर्गाकार पत्थर बनाने के लिये सभी आवश्यक निर्देशों के साथ आदेश दिया गया जिसे पुनः मकराना में सही चिह्न के साथ बनाया गया। यह नया वर्गाकार पत्थर जल्दी ही मिल गया ।

उसे समाधि पर रख दिया गया और उसके भीतर अवशेषों को प्रतिष्ठित कर दिया गया। इसके साथ ही यह दूसरा भागवत युद्ध समाप्त हुआ। लेकिन ऐसा लगता है कि यह युद्ध अनन्तकाल तक चलता रहेगा, जब तक की चेतना में पूर्ण परिवर्तन नहीं आ जाता।

सुरेन्द्रनाथ जौहर 'फ़कीर'
'मेरी माँ' पुस्तक -से

दर्शन दिवस की शुरूआत

-विमला गुप्ता

दर्शन दिवस की शुरूआत 21 फरवरी, 1927 से हुई थी। श्रीअरविन्द ने अपनी योग साधना को स्थायी रुप से प्रतिफलित करने हेतु 24 नवम्बर 1926 को पूर्ण एकांतवास ले लिया था। तब माता जी ने उनके साथ स्थायी तौर पर रहने वाले समस्त साधकों का दायित्व संभाल लिया था और तब से श्रीअरविन्द के दर्शन के लिए "दर्शन दिवस" की परम्परा शुरू हुई। तब से ही सभी आगंतुक एवं स्थायी साधक जन वर्ष के तीन प्रमुख अवसरों पर श्रीअरविन्द के दर्शन कर सकते थे। वे दिवस थे:

1. 21 फरवरी- श्रीमाँ का जन्म दिवस
2. 15 अगस्त- श्रीअरविन्द का जन्म दिवस
3. 24 नवम्बर– सिद्धि दिवस

21 फरवरी और 15 अगस्त के बीच लम्बा अन्तराल था। अतः 1931 में श्री माँ के अंतिम रूप से भारत आगमन के दिवस 24 अप्रैल को भी दर्शन-सूची में सम्मिलित कर लिया गया।

5 दिसंबर 1950 को श्रीअरविन्द के देहत्याग के पश्चात भी यह क्रम जारी रहा। आगंतुकों एवं आश्रमवासियों को इन दिवसों पर श्रीमाँ अपने हाथ से आशीर्वाद पैकिट (Blessing Packet) एवं संदेश कार्ड दिया करती थीं। 1962 से श्री माँ ने बालकनी-दर्शन देना प्रांरभ किया। वे बालकनी के रेलिंग से सटकर 4-6 मिनट खड़ी हो जाती थीं और एकत्रित दर्शनार्थियो की ओर एकाग्र दृष्टि से देखतीं और अपनी दृष्टि द्वारा उनके अन्दर दिव्य शक्ति के प्रकम्पनों को पहुँचाती थीं।

श्रीमाँ के देहत्याग के पश्चात भी 'दर्शन -दिवस' का यह क्रम जारी है। इन अवसरों पर श्रीमाँ एवं श्रीअरविन्द द्वारा लिखित पुस्तकों में से सन्देश-वचन वितरित किए जाते हैं।

वर्ष में केवल दो बार श्रीमाँ के कक्ष के दर्शन होते हैं:

प्रथम 21 फरवरी श्री माँ के जन्म दिवस पर, द्वितीय 17 नवम्बर श्रीमाँ के महासमाधि दिवस पर, 15 अगस्त एवं 24 नवम्बर को केवल श्रीअरविन्द के कक्ष में दर्शन एवं ध्यान होता है। 24 अप्रैल का प्रथम दर्शन संदेश 1950 से शुरू हुआ था।

इन संदेशों में से कुछ संदेशों को संकलित करके यहाँ हिन्दी में प्रस्तुत किया जा रहा है:

24 अप्रैल 1950

"शिष्य गुरु द्वारा स्वरुप को जानते है, बाहरी बाह्य व्यक्ति स्वरुप द्वारा गुरु को जानते हैं"

24 अप्रैल 1951

अतिमानस का पृथ्वी पर अवतरण अब मात्र एक वादा नहीं है वरन् एक ठोस जीवन्त सत्य है, एक वास्तविकता है। वह अब यहाँ क्रियाशील है। एक दिन आएगा जब अति अज्ञानी एवं अत्यधिक अचेतन यहाँ तक कि अति अनिच्छुक व्यक्ति भी इसे पहचानने का सौभाग्य पा सकेंगे।

श्रीमाँ

24 अप्रैल 1957

काल-चक्र की निरंतरता में प्रत्येक अवतार अधिक पूर्ण संसिद्धि का मात्र एक उदघोषक है, एक अग्रदूत है।

श्रीमाँ

24 अप्रैल 1958

दिव्य कृपा की स्वतंत्र क्रिया प्रणाली के दो समानान्तर पक्ष हैं जो पृथ्वी पर मनुष्यों के बीच प्रसारित हैं। ये दोनों ही समान रूप से अनिवार्य हैं किन्तु दोनों को एक समान स्वीकृति एवं प्रशंसा नहीं मिली है। उनमें से एक है: सार्वभौमिक, अविकृत 'शान्ति' जो चिंता, तनाव एवं कष्ट से छुटकारा दिलाती है। दूसरी है: एक गतिशील, सर्वसक्षम प्रगति जो विघ्न-बाधाओं से, दासत्व एवं आलस-प्रमाद से मुक्त करती है। शांति को वैश्विक स्तर पर दिव्य रूप में प्रशंसित किया गया किन्तु प्रगति का केवल उन्हीं लोगों द्वारा स्वागत एवं समर्थन किया गया जिसकी अभीप्सा बहुत तीव्र व गहन एवं साहस से परिपूर्ण है।

श्रीमाँ

1959

दिव्य पूर्णत्व सदैव हमारे ऊपर वर्तमान है किन्तु मनुष्य के लिए अपनी चेतना एवं कर्म में दिव्य होना और दोनों स्तरों पर दिव्य जीवन जीना ही आध्यात्मिकता का वास्तविक अर्थ है। इससे कम इस शब्द का कुछ और अर्थ करना केवल बनावटीपन है।

श्रीअरविन्द

1961

आन्तरिक सम्बन्ध का अर्थ है कि व्यक्ति श्रीमाँ की उपस्थिति का अपने अन्दर अनुभव करता है, हर वक्त उनकी ओर उन्मुख बना रहता है एवं उनकी क्रियाशील शक्ति और सदैव मदद करती

हुई शक्ति के प्रति वह जागरुक बना रहता है और श्रीमाँ के प्रति उसका हृदय प्रेम से भरपूर हो जाता है। तब वह श्रीमाँ के महान सान्निध्यि को प्रति क्षण अपने अन्दर महसूस कर रहा होता है, चाहे स्थूल रूप में वे समीप हों या न हों। यह सामीप्य उसके भौतिक देह एवं आन्तरिक सत्ता को समेट लेता है जब तक कि उसका मन श्रीमाँ के मन से घनिष्ठ न हो जाए, उसका प्राण उनके प्राण से समन्वित न हो जाए।

श्रीअरविन्द

1962

विजय सुनिश्चित है, यदि हम उसे बनाए रखें और इस विजय की उपलब्धि के समक्ष कौनसी कठिनाई , कौनसी कोशिश और श्रम ज्यादा महत्वपूर्ण हो सकते हैं ?

श्रीअरविन्द

1964

धार्मिक विचारों और अनुभवो में जो कुछ निम्न है, संकीर्ण है और उथलापन है, उससे दूर रहो। अत्यन्त व्यापक क्षितिजों से भी अधिक व्यापक हो जाओ। उच्चतम कंचनजंघा के शिखर से भी अधिक ऊंचे, उदात्त बन जाओ एवं सिन्धु की गहनत्तम गहराई से भी अधिक गहरे बनो।

1965

सही ढंग से संघर्ष एवं सामना करो और अन्ततः तुम्हारे विश्वास को स्थायित्व एवं समर्थन प्राप्त होगा।

श्रीमाँ

1968

अवस्थाओं की आध्यात्मिक व्यवस्था में जितनी श्रेष्ठता से हम अपनी अभीप्सा एवं विचार प्रायोजित करेंगे उतना ही महान "सत्य" जो अवतरित होना चाहता है, हमारे समीप आयेगा क्योंकि वह पहले से ही हमारे अन्दर निहित है और स्वयं को अपनी उस प्रच्छन्न गुह्य अवस्था से छुटकारा दिलाने की पुकार करता है।

श्रीअरविन्द

1969

सबसे उत्तम एवं सम्भावित ढंग यह है कि तुम दिव्य कृपा को अपने अन्दर कार्य करने की अनुमति दो, कभी उसका खंडन मत करो, उसके प्रति कृतघ्न मत बनो, उसके विपरीत मत जाओ अपितु प्रकाश, शान्ति तथा एकता और आनन्द तक पहुँचने के लिए सर्वदा उसका अनुकरण करो।

श्रीअरविन्द

नवम्बर, 2019

1970

हमारे सही अस्तित्व एवं सही बने रहने की शर्त है कि हम सर्वोच्च सत्य से जुड़ें और हमारी सत्ता में जो कुछ समन्वित है, उसमें उसे अभिव्यक्त करें तथा अपने अन्दर उसे ग्रहण करें। बस, यही सही जीवनयापन की शर्त है।

श्रीमाँ

1971

यह बता देना काफी होगा कि जो लोग सत्य की अभीप्सा करते हैं, उन्हें कुछ बोलने से बचना चाहिए।

श्रीमाँ

1972

'वह' हमारी सत्ता के तमावृत्त भागों में आता है, अदृश्य होकर और अन्धकार को ओढ़कर करता है अपना कार्य। वह है एक सूक्ष्म एवं सर्वज्ञ अतिथि और मार्गदर्शक। जब तक कि मनुष्य परिवर्तन की आवश्यकता एवं इच्छा का अनुभव करे कि यह जो कुछ है उसे उत्कृष्ट विधान के प्रति होना चाहिए, नम्र एवं अनुगत और हमारी देह के कोषाणुओं को उस अमर ज्योति के प्रति होना चाहिए ग्रहणशील एवं सहमत।

श्रीअरविन्द

1973

मानव की चेतना के बाहर,
वाणी के परे,
तुम हो सर्वोच्च चेतना,
अद्वितीय सद् वस्तु,
दिव्य सत्य।

श्रीमाँ

दर्शन का सच्चा अभिप्राय

श्रीमाँ से एक बार प्रश्नोत्तर के दौरान किसी साधक ने पूछा था, श्रीमाँ जब हम आपके पास दर्शन हेतु आते हैं तो हमारी मनोभावना में एक सहज सरल प्रफुल्लता कुछ समय तक बनी रहती है किन्तु कुछ समय पश्चात हम पुनः उसी विचलित प्रेरणा शून्य एवं सामान्य मनोवस्था में पहुँच जाते हैं, ऐसा क्यों ?

श्रीमाँ ने स्पष्ट किया,जब तुम मेरे पास आते हो तो तुम्हारे अर्न्तजगत में जो श्रेष्ठ है, सजग है, विकास तथा प्रगति का इच्छुक है उसे तुम अपनी सत्ता के अग्रभाग में रखकर मेरे समक्ष प्रस्तुत कर देते हो और जो अंश भाग अनिच्छुक, तमसपूर्ण एवं अज्ञ हैं उन्हें वहीं पीछे छोड़ मेरे पास आते हो, यह इसी प्रकार के कार्य व्यापार हैं, जैसे जब कोई देव दर्शन हेतु मन्दिर में जाता है, तो बाहर किसी की देख-रेख में अपने जूते-चप्पल, थैला-छाता आदि छोड़ मन्दिर में जाता है और दर्शन एवं प्रणाम के पश्चात वापस लौटकर उन्हें पुनः पहन ओढ़ लेता है, उठा लेता है। ऐसे ही वह अपनी निम्न वृत्तियों को भी वहाँ यह कहकर छोड़ देता है, 'ठहरो प्रतीक्षा करो' दर्शन के पश्चात मैं तुम्हें पुनः ले लूँगा और फिर वापस लौटकर वह वही एक मामूली इन्सान की तरह अपना कार्य करने लगता है।

उस अवस्था से उबरने के लिए तुम्हें चाहिये कि जब तुम मेरे पास आओ तो जो मनोवृत्तियाँ तुममें दुराग्रही हैं, जो विचार एवं प्रेरणाएँ अज्ञानजनित हैं, परिवर्तन के प्रति अनिच्छुक हैं, उन्हें अपनी हथेली पर रखकर आओ। मैं उन्हें पहचानकर, जीवन के सच्चे उद्देश्य की ओर, सच्चे प्रकाश एंव प्रगति की ओर उन्मुख होने का अवसर दूँगी। परिवर्तित करने की कोशिश करूँगी, उन्हें संशोधित करुँगी और आवश्कता पड़ने पर विनिष्ट भी करूँगी। यही मेरी प्रयोग विधि है, यही दर्शन का सच्चा अभिप्राय है।

विमला गुप्ता

नवम्बर, 2019

मैं तुम्हारी माँ हूँ-श्रीमाँ

मेरे बच्चे! याद रखना, मैं सदैव तुम्हारे साथ हूँ। तुम्हारे अन्तरात्मा की गहराई में मैं प्रत्येक क्षण तुम्हारे जीवन एंव प्रगति का अवलोकन करती हूँ और अपने प्रेम एवं परवाह के साथ तुम्हारे अनिश्चित कदमों को राह दिखाती हूँ।

तुम जहाँ कहीं भी हो, विश्व के किसी भी कोने में मुझे स्मरण करो, जब भी तुम्हें किंचित् भी समय मिले, मेरा नाम दुहराओ, मैं हर जगह उपस्थित हूँ। मेरे प्रिय बालक! मेरी उपस्थिति को देखने और अनुभव करने के लिए केवल तुम्हें अपने भीतर के प्रकाश का बटन भर दबाना है। मैं तुम्हारे अंदर हूँ, बाहर हूँ और नीचे हूँ। अपने हृदय की ऊष्मा में मुझे स्मरण करो और तुम मेरा प्रेम अनुभव करोगे।

मै कभी तुम्हारी भर्त्सना नहीं करूँगी, न ही कभी तुम्हें दण्डित करूँगी क्योंकि वह मेरा तरीका नहीं है। मैं दिन और रात अपना प्रेम तुम्हारे हृदय में उड़ेल रही हूँ। मैं तुम्हारी माता हूँ और साम्राज्ञी हूँ। मुझे सदैव स्मरण करो, क्योंकि मैं तुम्हारे अत्यन्त समीप हूँ, तुम्हारी बहुत ही घनिष्ठ एवं प्रिय मित्र हूँ। मुझसे कुछ भी मत छिपाओ। अपनी समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मुझ पर निर्भर करो।

सदैव याद रखो कि तुम मेरे बच्चे हो और मैं तुम्हारी माता हूँ। तुम्हारे कारण कभी भी लज्जित महसूस नहीं करूँगी। तुम जो कुछ भी करो, मुझे स्मरण करो, मैं तुम्हें सूर्य का तेजस्वी प्रकाश दूँगी, वही हँसी और खुशी दूँगी, जिसे कोई भी तुमसे दूर नहीं ले जा सकता। अपनी हज़ार भूलों के बावजूद तुम मुझे पकड़े रहो, स्मरण करते रहो। याद रखना मेरा कोई भी बालक असफल नहीं हो सकता। मुझे अपनी सभी योजनाएँ एवं स्वप्न बताओ, मैं सदैव तुम्हारे साथ हूँ। मैं तुम्हें प्यार करती हूँ और तुम्हारी रक्षा करती हूँ।

मैं सचमुच तुम्हें बहुत अच्छा देखना चाहती हूँ, सदैव प्रसन्न एवं हँसमुख देखना चाहती हूँ। याद रखना मैं सभी जीवन्त सत्ताओं, मानव एवं पशु के अन्तःकरण में निवास करती हूँ। जब कभी तुम किसी के प्रति दयालु होते हो तो समझो मेरे प्रति दयालु हुए हो। तुम सिन्धु जैसे उदार बनो, बिना चूके मुझे याद करो और मैं क्या चाहती हूँ,यह जानने के लिए अपने हृदय में प्रवेश करो। याद रखना ,मुझसे कभी झूठ मत बोलना। मैं तुम्हारी पहुँच में वह सब ला दूँगी, जो सुन्दर एवं उत्कृष्ट है। सबके प्रति

सद्भाव बनाए रखना और याद रखना, सभी मेरे बालक हैं।

सहायता के लिए सदैव मुझे ही पुकारो क्योंकि मैं दिन-रात तुम्हारे साथ हूँ। मेरे बच्चे! यह सदैव याद रखना कि तुम्हारा जीवन केवल तभी उपयोगी एवं सार्थक होता है, जब तुम उसे भगवान् की सेवा के लिये प्रस्तुत कर देते हो।

मेरे बच्चो!

हम सब एक ही लक्ष्य की प्राप्ति हेतु एक दूसरे से जुड़ गए हैं, यह कार्य बहुत अद्वितीय एवं नूतन है जिसे दिव्य कृपा ने सम्पन्न करने के लिए हमें सौंपा है। मुझे आशा है कि तुम लोग अधिकाधिक इस कार्य की असाधारण महत्ता को समझोगे और उस अनुपम प्रसन्नता का अपने अन्दर अनुभव करोगे जो इसके सम्पन्न होने के पश्चात् तुम्हें अनुभव होगी। दिव्य शक्ति तुम्हारे साथ है, इसकी अनुभूति को अधिक से अधिक महसूस करो और बहुत सावधान रहो, कभी धोखा देने की कोशिश मत करना ।

तुम एक नूतन विश्व की संसिद्धि के लिए नूतन व्यक्तित्व उपलब्ध करो, उसको अपने अन्दर अनुभव करो, उसकी कामना करो और तदनुसार कर्म करो कि तुम एक नूतन विश्व के प्राकट्य के लिए यहाँ आए हो और तुम नूतन सत्ता हो और यह सब सम्पादित करने के लिए मेरा आशीर्वाद सदैव तुम्हारे साथ रहेगा ।

मेरे प्रिय बच्चो!

तुम्हें मेरा प्रेम, मेरी कृपा एवं आशीर्वाद सदैव प्राप्त है किन्तु यदि तुम उन्हें ठोस रूप में अनुभव करना चाहते हो तो तुम्हें अनुशासित, सतर्क एवं एकाग्र होना चाहिए और इससे भी अधिक जानने वाली बात यह है कि तुम्हें अपनी निम्न इच्छाओं की संतुष्टि एवं आवेगों- उद्वेगों की धकेल-पकेल एवं उनके प्रकम्पनों से प्रेरित या प्रभावित नहीं होना चाहिए ।

तुम्हें अपने जीवन में एक चयन करना चाहिए कि तुम अपनी इच्छाओं की निरर्थकता तथा अनियमितता के साथ जीना चाहते हो या प्रकृति पर प्रभुत्व पाना चाहते हो। जीवन के प्रत्येक क्षण में तुम्हारे सामने एक चयन प्रस्तुत है और वह है तुम्हारी निजी तुष्टियों एवं भगवत्कृपा के बीच। भगवान की संसिद्धि के लिए किए जा रहे कार्य में तुम्हें निर्मल सुख का अनुभव होगा, यह तुम्हारी अपेक्षाओं से

नवम्बर, 2019

कहीं अधिक महान होगा।

मैंने अपने जीवन में यह सीखा है कि एक छोटा बालक भी तुम्हें एक नयी बात सिखा सकता है। इसलिए कि वह एक दर्पण की भाँति है, जो तुम्हारे स्वरूप को, (जैसेकि तुम हो) प्रतिबिम्बित करता है। वह तुम्हें कुछ ऐसा बता सकता है, जो सत्य नहीं है, साथ ही ऐसा भी कुछ दिखा सकता है, जो तुम नहीं जानते। इस तरह तुम बहुत हद तक उसके द्वारा लाभ उठा सकते हो और किसी अनिच्छुक प्रतिक्रिया के बिना एक सबक सीख सकते हो।

अपने जीवन के प्रत्येक मुहूर्त्त में मैंने यह अनुभव किया है कि व्यक्ति सदैव कुछ नया सीख सकता है, कुछ नया जान सकता है लेकिन मैं कभी भी दूसरों की धारणा या सलाह से बँधी हुई नहीं रही हूँ क्योंकि मैं जानती हूँ कि सम्पूर्ण विश्व में मात्र एक ही सर्वोच्च सत्य है, जो सही ज्ञान सिखा सकता है और जिसे सीखकर मनुष्य स्वयं को मुक्त पाता है। यही वह पाठ है, जो मैं तुम सबके लिए चाहती हूँ, अर्थात 'मुक्ति' सभी आसक्तियों से, समस्त अज्ञान से, समस्त प्रतिक्रियाओं से और हालातों से, केवल एक ही तत्व 'समर्पण' उस परम दिव्य प्रभु के प्रति, तुममें विद्यमान रहे।

हिन्दी रूपान्तरण : विमला गुप्ता

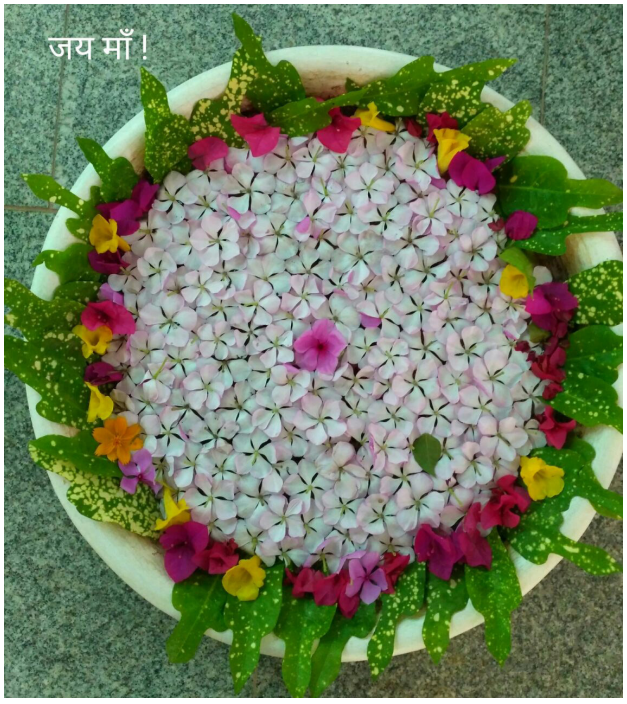

श्रीमाँ का वक्तव्य

मैं जानती हूँ 'मैं क्या हूँ'। दूसरे क्या कहते हैं, क्या सोचते हैं, इससे उस सच्चाई में कोई फर्क नहीं पड़ता, जो मैं अपने बारे में जानती हूँ। संसार की स्वीकृति या अस्वीकृति न तो उस वास्तविकता को घटा सकती है, न बढ़ा सकती है। मैं जो कुछ हूँ, मैं क्या करती हूँ,यह वास्तव में अलग सवाल है और यह सवाल संसार की अपनी मनः स्थितियों एवं हालातों पर निर्भर करता है क्योंकि मुझे उन्हीं के माध्यम से और उन्हीं के द्वारा कार्य करना है। मैं जानती हूँ उस सत्यता की परिपूर्णता को, जिसे अभिव्यक्त करने के लिए मैं कार्य कर रही हूँ। लेकिन, वह सत्य विश्व जीवन में कितना अभिव्यक्त हो सकेगा, यह स्वयं विश्व जीवन के प्रयास और प्रस्तुति पर निर्भर करता है।

जो चेतना, मैं इस पतनोन्मुख प्रवृति वाले जीवन में उतारने का प्रयत्न कर रही हूँ विश्व को उसे ग्रहण करने और स्वीकार करने की क्षमता अपनानी चाहिये, अन्यथा चाहे मैं कितना ही सर्वोच्च और अवश्यम्भावी सत्य यहां विकीर्ण करने का यत्न करूँ, वह पूर्णतया अव्यक्त रह जायगा यदि जीवन की वर्तमान मनोवृति उसे पहचानने और स्वीकार करने से इन्कार करती है, और निश्चय ही यह सृष्टि रंचमात्र भी उससे लाभान्वित नहीं हो सकेगी ।

आप पूछ सकते हैं कि यदि यह चेतना इतनी सर्वोच्च है और यह सत्य सर्वव्यापी है तो क्यों वह स्वयं इस संसार को अपनी स्वीकृति के लिए बाध्य नहीं कर सकता ? क्या वह संसार के अवरोधक भाव को तोड़ नहीं सकता अथवा उसकी अस्वीकृतियों को ग्रहणशीलता में बदलने के लिए बाध्य नहीं कर सकता ? हाँ, सच है, ऐसा नहीं हो सकता क्योंकि सृष्टि का सृजन इस तरीके से नहीं हुआ है और न विवशता से यह आगे बढ़ी है और न इस पद्धति से इसने विकास किया है। इस सृष्टि और सृजन का मूल उदगम स्वतन्त्रता है। यह उसकी चेतना का स्वतंत्र चुनाव है और यह स्वतंत्रता ही उसके चरित्र का मूल स्वभाव है। यदि संसार इस सर्वोच्च शक्ति से इन्कार करता है, इस श्रेष्ठ उपलब्धि से मुँह मोड़ता है ,तो वह अपने स्वतंत्र चुनाव के सुखद भाव में ही ऐसा करता है। और यदि वह उस सत्य को पहचानता और उसकी उपलब्धि की ओर मुड़ता है तो यह भी उसके स्वतंत्र चुनाव के आनन्द का परिणाम है। यदि इस विकार युक्त संसार को तुरन्त उस सच्चाई की ओर मुड़ने का आदेश दे दिया जाता, और सब कुछ

क्षणों में चमत्कार की तरह घटित कर दिया जाता, तब इस सृष्टि की रचना का कोई प्रयोजन नहीं था। सृष्टि रचना विकास का एक खेल है, एक यात्रा है, एक गति है, जो समय और अवकाश के द्वारा कदम-कदम अपने स्तरों पर आगे बढ़ती है। यह ऐसी निरन्तर प्रक्रिया है जो अपने स्रोत से दूर जाती है और पुनः उसी की ओर लौटती है। यही इस विश्व रचना का सिद्धान्त व प्रयोजन है। सृष्टि की इस रचना में कोई विवशता और बाध्यता नहीं है। इसकी स्वाभाविक गति में किसी आदेश की मजबूरी नहीं है, क्योंकि ऐसी लादी हुई बाध्यता सृजन की गति और लय को भंग कर देगी तो भी एक विवशता है, एक बाध्यता है और वह है अपनी निजी प्रकृति और स्वभाव का अनवरत दबाव...आन्तरिक अपूर्णता का सतत अहसास और यही वह चीज़ है जो इस विश्व जीवन की चेतना को इन तमाम हेरा-फेरी व परिवर्तनों से होकर अपने मूल उदगम की ओर ले जाती है। अब यह कहा जाता है कि भगवान की कृपा सब कुछ कर सकती है और उसे करना चाहिए, तो इस बात का इससे अधिक या कम कोई अर्थ नहीं कि यह कृपा इस वापसी और पहचान को तीव्र अभीप्सा और गति देती है। भगवान की कृपा उन आधारों को चुनती है, जो संकल्पशील हैं, सजग हैं और उसका सहयोग करते हैं। वे लोग स्वयं इस कृपा के अंश और भाग बन जाते हैं। जिस सत्य की स्थापना के लिए मैं कार्य कर रही हूँ, वह पृथ्वी पर अपने को धारण व अभिव्यक्त करेगा क्योंकि अन्ततः पृथ्वी और सृष्टि की यही अनिवार्य नियति है। आप जानते हैं कि वह नियति क्या है ? वह है: दिव्य-जीवन !

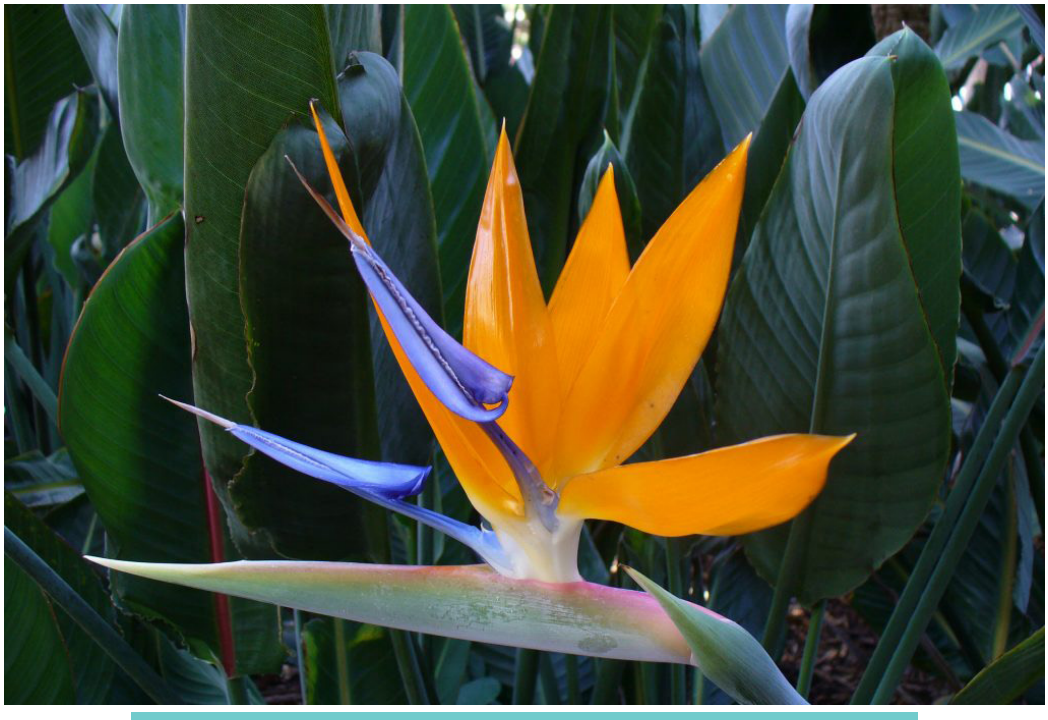

श्रीमाँ के सन्देश

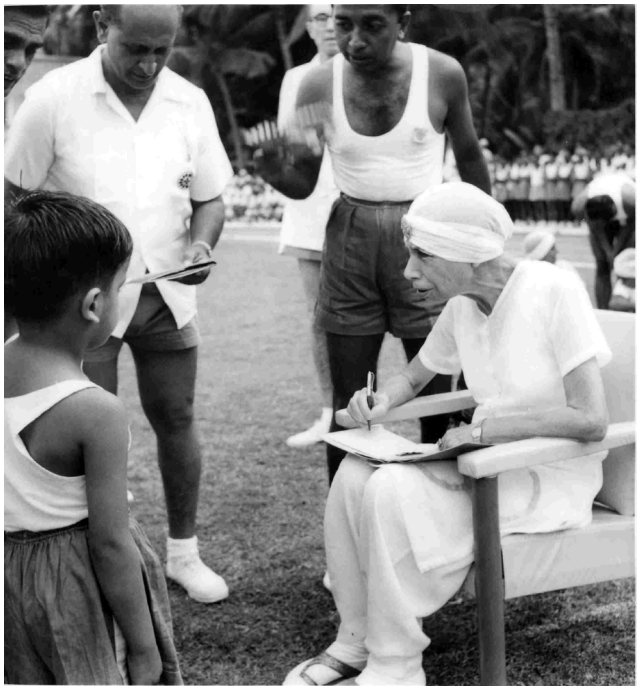

कठिन वक्त पृथ्वी पर आता है मनुष्य को विवश करने के लिए कि वह क्षुद्र अहंकार से ऊपर उठे और प्रकाश एवम बल प्राप्त करने के लिए भगवान की ओर उन्मुख हो। मानवीय प्रज्ञा अज्ञानजनित होती है, सिर्फ भगवान ही सब कुछ जानते हैं।

मनुष्यों के मध्य रहकर भी अपने को एकाकी महसूस करना ही वह चिह्न है कि अब तुम अपने भीतर भगवान की उपस्थिति ढूँढने का प्रयास करो। एक वक्त ऐसा आता है जब जीवन भगवान के सामीप्य के बिना असह्य हो जाता है। ऐसे वक्त पूरी तरह अपने को भगवान को सौंप दो और तुम पुनः उनके प्रकाश में उदित हो उठोगे ।

ऐसा होता है कि किसी एक मुहूर्त में सहसा कोई यह सोचने लगता है कि वह यहाँ इस पृथ्वी पर बिना कारण, बिना प्रयोजन के नहीं आया है; कि उसे कुछ करना है और वह 'कुछ' उसके अहंकार से पीड़ित नहीं है । इस क्षण के परिचय का पहला प्रश्न है कि मैं यहाँ क्यों हूँ, किस कारण हूँ, मेरे जीवन का क्या अभिप्राय है ?

मैं उस दिन की राह देख रही हूँ जब व्यवस्था, अव्यवस्था पर विजय पायेगी और सामन्जस्य पृथकता का स्वामी होगा। जो लोग वर्तमान समय की इन निम्न गतिविधियों से मेरे साथ मिलकर लड़ रहे हैं, उनके साथ मेरी शक्ति और सहायता सघन

रूप में है । मैं उनसे यही चाहती हूँ कि वे आश्वस्त व दृढ़ रहें, सहन करें; सत्य की विजय होगी ।

ओह ! तुम लोग कब जागोगे ?
इस ज़ड़ता को विच्छिन्न करोगे ?
अज्ञान को अपने से दूर करोगे ?
इस दिव्य रोशनी का स्पर्श पाकर
सत्य जीवन में डुबकी लगाओगे ?

कब ? कब वह सौभाग्यशाली और अद्भुत दिवस आएगा ?

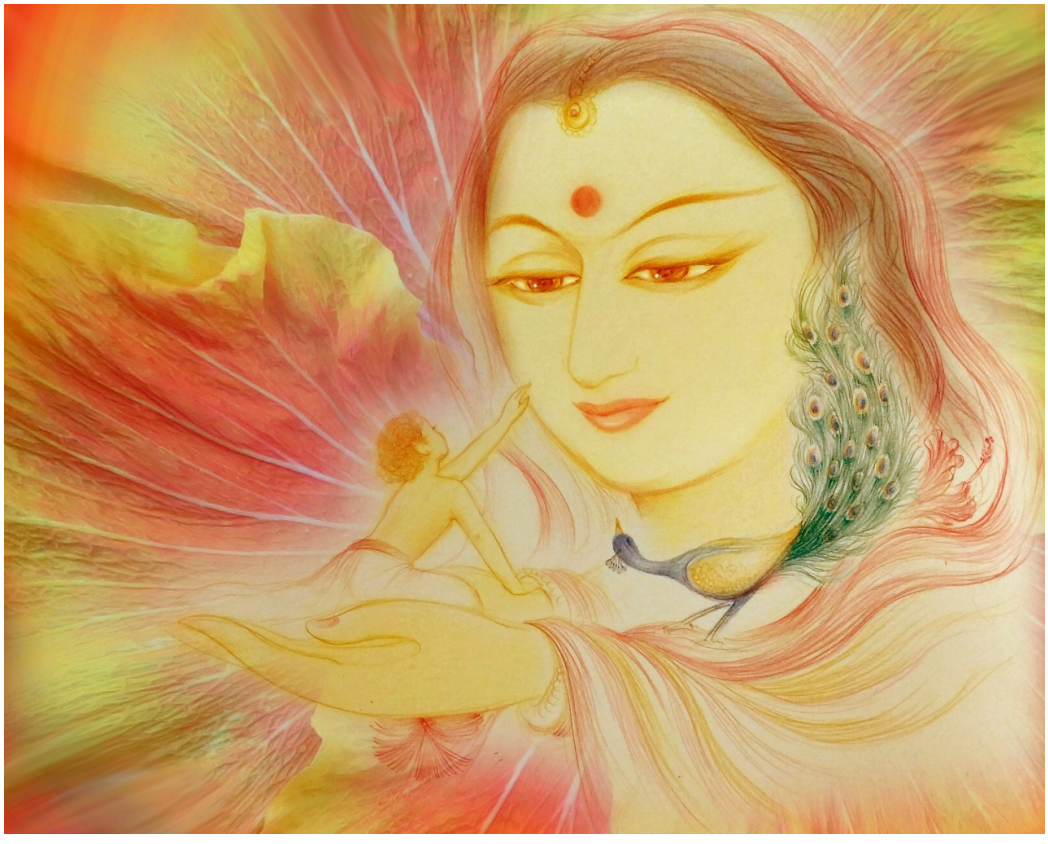

श्रीमाँ के चित्र: क्या हो हमारी मनोवृत्ति?

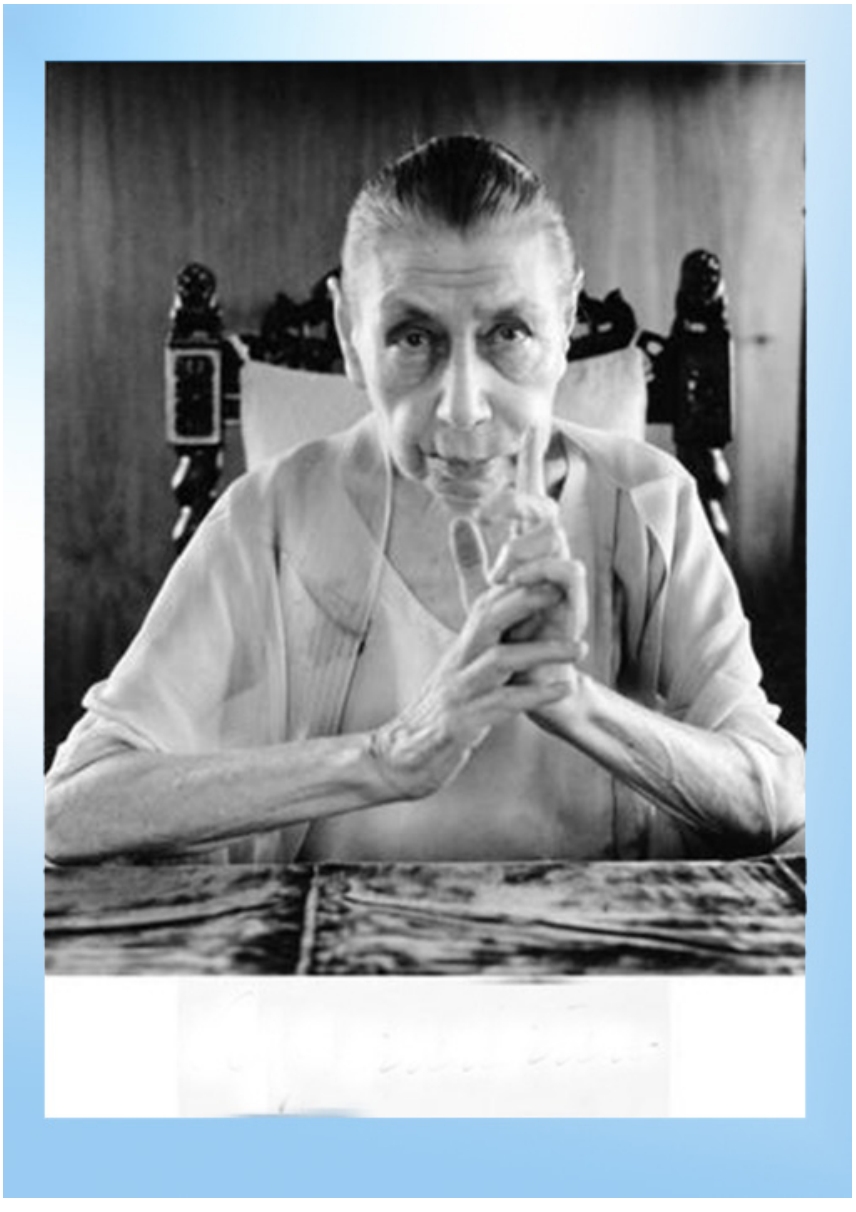

भारतीय जीवन में अध्यात्म-भावना का जिस प्रकार स्वतः संचरण पाया जाता है वह एक अद्भुत-उपलब्धि है, जो और भी विशिष्ट बन जाती है, जब हम गुरु सान्निध्य के द्वारा जागरुक ज्ञान और प्रयास से इसमें प्रवृत्त होते हैं।

तब हम अपने प्रियजन,आदरणीय और अध्येय-मार्गदर्शकों की तस्वीर में न केवल आकर्षण, बल्कि उनकी जीवन्त उपस्थिति का अनुभव करते हैं। श्रीमाँ की तस्वीरों को अपने आस-पास रखते हुए उनके बच्चों की मनोवृत्ति कैसी हो इसके सबंध में श्रीमाँ का अपने एक बालक(श्री अरविन्द-आश्रम पाण्डिचेरी के साधक) के साथ उपलब्ध वार्तालाप हमें यह जागरुकता प्रदान करता है।

उनके कथानानुसार-'प्रत्येक की मनोवृत्ति के अनुसार उसमें कुछ नयापन आ जाता है। वह प्रतिक्षण बदलता रहता है। मैं कभी एक समान नहीं रहती। यह बहुत-सी बातों पर निर्भर है। अपने प्रत्येक चित्र में मैं हर एक के लिये भिन्न हूँ और यह भिन्नता बहुत स्पष्ट होती है, क्योंकि हर एक के लिये जो उचित है मैं उसी रुप में उसे दीखती हूँ...,

सामान्यतः मेरे चित्रों में परम चेतना के असंख्य रुपों और अभिव्यक्ति की विभिन्न स्थितियों के किसी एक रुप को शाश्वत काल के लिये समय के घेरे में बांध लिया जाता है (श्रीमाँ अपना एक चित्र दिखाती हैं) वैश्व मां के असंख्य रुपों में से एक रुप। अब यह देखना तुम्हारा काम है कि किस चित्र में मेरे किस रुप की प्रधानता है अर्थात् जब तुम चित्र देखते हो तो कौन-सा भाव तुम्हें ज्यादा आकर्षित करता है। तुम्हें इसका अनुभव कर इसे स्वयं पाना होगा। मेरे प्रत्येक चित्र में मेरी सत्ता का भिन्न पक्ष उजागर होता है। उसमें एक परम सत्ता विद्यमान होती है। वह केवल कागज पर कोई चित्र नहीं होता बल्कि जीवन्त उपस्थिति स्पन्दनशील शक्ति, एक सत्ता या निर्गमन है जिसे बाहर प्रकट किया गया है और जिसमें कार्य करने की महान शक्ति हैं। श्रीमाँ कहना जारी रखती हैं:

बहरहाल, यह मेरे अस्तित्व का एक भाग है जो चित्र में ठोस रुप में उतर आता है, और वह भाग अपने -आपको इस तरह प्रकट करता है कि स्वयं चित्र के द्वारा परम शक्ति कार्य करती है। इसका कारण यह है कि मेरी उपस्थिति उसमें जीवन्त होती है और मेरे अस्तित्व का एक भाग उस चित्र में आविर्भूत होता है।

यह उस व्यक्ति पर भी निर्भर करता है जिसे मैं चित्र देती हूँ कि उस क्षण उसे किस चीज की और क्यों आवश्कता है, ये सभी बातें बहुत महत्व रखती हैं। इसी कारण प्रत्येक चित्र में समान व्यक्तित्व अथवा पहलू प्रकट नहीं होता क्योंकि यह बहुत सी बातों पर जैसे व्यक्ति की चेतना की अवस्था,उसकी मनोदशा पर निर्भर करता है। वस्तुतः यह हमेशा भिन्नता लिये होता है। तुम्हारे लिये वह एक रुप को दर्शाता है जब कि किसी दूसरे के लिये एकदम से भिन्न रुप को, जब कि चित्र एक ही होता है।

एक बार एक साधक ने पूछा:

साधक: माँ, आपके फोटो में क्या चीज होती है?

श्रीमाँ: तुम पूछना क्या चाहते हो?

साधक: वे किस चीज़ का संकेत देते या प्रतिनिधित्व करते हैं ? आपके फोटो में क्या होता है?

श्रीमाँ तुम नहीं जानते क्या होता है ?(श्रीमाँ मुस्कुराती हैं) उसमें मैं होती हूं। स्वयं मैं उसके अंदर उपस्थित होती हूँ ।

साधक: लेकिन उसमें आप किस रुप में होती हैं?

श्रीमाँ: प्रत्येक रुप में होती हूँ । यह फोटो पर निर्भर करता है। सचमुच यह बहुत सारी चीज़ो पर निर्भर करता है, क्योंकि प्रत्येक फोटो में मैं भिन्न होती हूं। व्यक्तियों की प्रकृति के अनुसार मैं प्रत्येक व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व के किसी विशेष पहलू को दर्शानेवाला चित्र देती हूँ ।
प्रत्येक क्षण मैं भिन्न रुप, भिन्न मनोवृत्ति का प्रतिनिधित्व करती हूँ और प्रत्येक व्यक्ति के लिये मेरा रुप भिन्न-भिन्न होता है। किसी भी फोटो में वह सबके लिये समान नहीं होता।
उदाहरण के लिये,एक ही चित्र किसी के लिए करुणा का द्योतक हो सकता है, तो दूसरे के लिये नीरव-निश्चलता और पूर्ण अचंचलता का या फिर किसी तीसरे के लिये उसमें अपार कृपा, प्रेम ,वैश्व सत्य का पुट हो सकता है,या फिर कोई उसमें शाश्वत, अनन्त चेतना या दिव्य माधुर्य की झांकी पा सकता है और इस तरह एक ही चित्र में मेरे अन्य अनेक रुपों की झांकी व्यक्तियों को मिल सकती है। प्रत्येक व्यक्ति के साथ वह भिन्न रुप ग्रहण कर सकता है प्रत्येक क्षण।
अपने एक विशेष चित्र के बारे में उनका कथन प्रस्तुत है।

चित्रः आराधना और प्रणाम

श्रीमाँ: यह क्या है ?
श्रीमाँ! यह आपका एक चित्र है।
आह !मेरा एक चित्र ? क्या तुम इस पर मेरे हस्ताक्षर चाहते हो?
जी हाँ श्रीमाँ, लेकिन आप इस चित्र में किसे और क्यों प्रणाम कर रही हैं ?
क्या तुम यह नही देख पाते कि मैं सत्य को नमस्कार कर रही हूँ ? यह महत्तवपूर्ण मुद्रा है, यह आराधना और विनय की वृत्ति है। मैं धीरज के साथ उस दिन की राह देख रही हूँ जब सत्य ही हमारा एकमात्र पथ प्रदर्शक होगा। यह वृत्ति बहुत आवश्यक है। अगर धरती चाहती है कि दिव्य सत्य यहाँ

पर पूरी तरह प्रतिष्ठित हो तो उसे यह वृत्ति अपनानी होगी। यही एकमात्र चीज़ है जो पृथ्वी की रक्षा कर सकती है।

इस वृत्ति में रहना और ऊपर की ओर अभीप्सा करना। पृथ्वी को इस वृत्ति के साथ सत्य के आगे नमन करना सीखना चाहिये। यह आराधना भी है और प्रणति भी, यही वह चीज है जो उसे सीखनी चाहिये। इसका अर्थ और भी बहुत कुछ है। यह बहुत गहरी और उच्च वस्तु है।

किसी ने श्रीमाँ को एक सज्जन को नमस्कार का उत्तर देते हुए देखा तो आश्चर्य में पड़ गया कि श्रीमाँ एक साधारण मनुष्य को नमस्कार कैसे कर रही हैं। वह श्रीमाँ से पूछ ही बैठा। उन्होंने उत्तर दिया, "मैं उसे नहीं,उसमें स्थित परम् पुरुष को नमस्कार कर रही थी।"

श्रीमाँ

(कृतज्ञता-ज्ञापन)

सन् 1926 में श्री अरविन्द ने अपनी आगामी साधना की संसिद्धि और उसे शीघ्र सम्पन्न करने हेतु पूर्ण एकान्तवास ले लिया था। अब श्रीमाँ का कार्यभार इतना विविध, विस्तृत एवं व्यापक हो गया था कि किसी दैवी शक्ति का प्रकाश एवं प्रेरणा ही उसे संपन्न कर सकते थे, और माँ तो स्वयं इस दैवी शक्ति की केन्द्र थीं। उन्होंने निरन्तर हम अल्पज्ञ, द्वंद्वपीड़ित अहंग्रस्त बालकों को अपना लिया और अपनी हर शिक्षा को स्वयं प्रमाण बनकर हमें आश्वस्त किया कि हम जानें, सीखें, समझें व ग्रहण करें और जीवन के सच्चे लक्ष्य की ओर अग्रसर हों। हम निम्न सामान्य प्रकृति की अभ्यस्त जकड़नों से कैसे छूटें और उच्चतर चेतना की क्रियाओं को अपने इस भौतिक देह, मन, प्राण के हर लघु-वृहद कोष में ग्रहण करें। वे कौन सी विधियाँ एवं प्रणालियाँ हैं जिनको अपनाकर इस महत्तर उद्देश्य की प्राप्ति होगी। यही अतिदुर्लभ प्रयास माँ ने प्रतिक्षण किया, अथक रहकर किया। वे लिखती हैं :

"मनुष्य शरीर ग्रहण करते हैं,नहीं जानते क्यों किया ?
सारा जीवन उसमें व्यतीत करते हैं, और वे नहीं जानते क्यों बिताया?
फिर उनका शरीर छूट जाता है और वे नहीं जानते क्यों छूटा ?"

और इस प्रक्रिया को वे बारम्बार जन्मान्तरों तक दुहराते जाते हैं, अनिश्चित काल तक बिना जाने, बिना अपने से पूछे, और फिर किसी मूहर्त्त में उनकी अंतर्रात्मा उनसे पूछती है "आखिर कब तक? जीवन के महत्तर प्रयोजन को पूरा करने के लिए तुम यहाँ हो, अपना अवसर मत चूको"। किन्तु कई जन्मों की व्यर्थता के बाद यह पहला जन्म' उसे प्राप्त होता है, यही नव जन्म है।अज्ञान की यह व्यर्थता, मानव जीवन की यह निष्प्रयोजनता, श्रीमाँ को मंजूर नहीं थी। इसमें सन्देह नहीं कि जीवन के इस प्रयोजन की गरिमा पहचानना सहज नहीं। इसलिए माँ आई थीं, उन्होंने शरीर के गुण-दोष वहन किए थे और प्रतिपल हमें सिखाया था, "पसन्द- नापसन्द और प्राथमिकता के आधार पर जीवन के उद्देश्य का निर्णय मत करो, एक उत्कृष्ट संकल्प, एक वृहत्तर उद्देश्य के लिए चुनाव करो और उसकी राह में आने वाले बाधक तत्वों, सुझावों, प्रभावों एवं दुराग्रहों का बहादुरी से बहिष्कार करो, उन्हें रास्ते से हटा दो। मैं सदैव तुम्हारे इस चयन के अभियान में तुम्हारे साथ हूँ, निराशा को अपनी सत्ता में स्थान मत देना।" श्रीमाँ के कार्य की यही विधि थी। मानव सत्ता के सभी अंध अंशभागों को, जड़ित अभ्यासों को, उसकी अज्ञान जनित हठधर्मी से निर्मित अवरोधों को अपनी अन्तर्दृष्टि के प्रकाश में देखना, परखना,

और उनके अनुसार क्रिया करना। वे अनन्त धैर्य, क्षमता, करुणा एवं दिव्य ज्ञान की अधिष्ठात्री दैवी शक्ति थीं।

हमारे अनन्त जन्मों की अभिलाषा के फलस्वरुप वे हम अबोध मानवों के बीच आईं थीं, अन्तर की दीर्धकालीन पुकार के फलस्वरुप हमने उनका दर्शन, स्पर्श एवं सान्निध्य पाया। हम उनके सच्चे वीर बालक बनें, संघर्ष करने हेतु सैनिक बनें, उनकी दिव्य वाणी को सुनें और उनके आदेश का पालन करें, उनका अक्षय प्रेम हमारे साथ है। उनकी वात्सल्यमयी गोद में हमारा स्थान सदैव सुरक्षित है।

'Love in her was the wider than the universe'

यौवन की परिभाषा

हम कह सकते हैं कि यौवन है: सतत विकास और अविच्छिन्न प्रगति।
ये है क्षमताओं का, सम्भावनाओं का विकास, कर्म क्षेत्र का विकास और चेतना का प्रसार और समस्त ब्योरों को जानने-जाँचने का निरंतर प्रयास।
किसी ने मुझसे कहाः 'तो मनुष्य जब बढ़ना बन्द कर देता है तो वह जवान नहीं रह जाता ?'
मैने कहाः 'स्पष्ट ही, मैं यह नहीं सोचती कि मनुष्य सदा ही बढ़ता रहता है,परन्तु मनुष्य केवल भौतिक रुप के अतिरिक्त दूसरे प्रकार से भी तो वर्द्धित हो सकता है।

-श्री मातृवाणी-प्रश्न-उत्तर-1956 पृ.24

सब बंधनों से मुक्त हो जाओ

यदि तुम्हारा उद्देश्य आत्मा के स्वातन्त्र्य में स्वतंत्र होना है तो तुम्हें सभी प्रकार के बन्धनों से छुटकारा पाना चाहिये, वे बन्धन जो तुम्हारी आन्तरिक सत्ता का सत्य नहीं हैं बस अवचेतन की आदतों,और अभ्यासों से आते हैं। यदि तुम स्वयं को पूर्णतया, सर्वथा एवं निश्चित तौर पर भगवान को समर्पित करना चाहते हो तो तुम्हें यह प्रयास पूर्ण निष्ठा से करना चाहिये। तुम स्वयं को यहाँ-वहाँ से टुकड़ो में बंधा हुआ मत छोड़ो।

जब तुम योग-पथ पर आते हो, तुम्हें अपनी समग्र आन्तरिक संरचना को और अपने प्राणिक ढांचे को छिन्न-भिन्न कर देना चाहिए। तुम्हें इस बात के लिये तैयार रहना चाहिये कि तुम्हे कुछ भी सहारा नहीं चाहिए, सिवाय तुम्हारी अपनी आस्था एवं आत्मविश्वास के । तुम्हें अपने अतीत को भूल जाना होगा और इसे अपनी चेतना से पूरी तरह तोड़कर निकाल फेंकना होगा और हर प्रकार के बन्धनों से मुक्त एक नव जन्म लेना होगा। तुम यह मत सोचो कि तुम क्या थे, वरन यह सोचो कि क्या बनने की अभीप्सा करते हो। वही बनो जो तुम कार्यान्वित करना चाहते हो। अपने मृत अतीत से मुँह मोड़ लो और सीधे एकाग्र होकर भविष्य की ओर देखो, तुम्हारा धर्म, देश, परिवार वहाँ उपस्थित है और वह भगवान हैं।

त्रियुगीनारायण जीः संस्मरण

सालों पहले महसुवा गांव के आदमी ने केदार-बद्री की यात्रा की थी। उन दिनों जब पैदल यात्रा होती थी तब यात्री पहले त्रियुगी नारायण (भगवान शिव पार्वती की विवाह- स्थली जहाँ तीन युगों से उनके विवाह की धूनी जल रही है) जाते थे। महसुवा गाँव के उस किसान ने यात्रा से लौटकर अपने बड़े बेटे का नाम केदारनाथ रखा और छोटे का नाम त्रियुगीनारायण ! के नित्य धाम के वासी हो गये...

जब मारोदिया जी ने 20 सितम्बर को त्रियुगी जी के निधन की ख़बर साँझा की तो मुझे बिजली का झटका-सा लगा! और फिर गत एक दशक में उनके साथ बिताए पल स्मृति के चित्रपट पर सजीव हो गए...

जुलाई 2009 में सावित्री पर शोध करते समय पहली बार दिल्ली आश्रम जाना हुआ और वहीं इस सहृदय महात्मा के दर्शन हुए। उस पहली मुलाकात का अंतिम वाक्य उन्होंने इस प्रकार कहाः श्रीअरविन्द तुमसे भी साधना करवाकर छोड़ेंगे!

उन्हें मैंने शुरु से ही चाचाजी कहा, बाद में अमीर फकीर जौहर साहब के साथ उनके संबधों की गहराई को भी जाना। 184 नम्बर के उनके कमरे में 2013 में एक दिन बहुत भावुक होकर उन्होनें मुझे अंग्रेजी में मातृवाणी के सभी खंड उपहार स्वरुप भेंट कर दिए। चाचाजी को जब भी देखा, कर्मधारा के लिए लिखते या प्रूफरीडिंग करते देखा।

उन्हीं की प्रेरणा से जून 2011 से 2016 तक कर्मधारा के लगभग हर अंक में मेरे लेख छपे। सादगी,सरलता और साधना की तरलता से भरे हुए इस आदमी का स्पर्श जिसने भी पाया, वह उन्हें भुला न पाया।

उनके पास आदमी को परखने की गहरी दृष्टि थी और अपनी मधुर आवाज और धीमी मुस्कुराहट में वे बड़ी से बड़ी बात कह देते थे।

दिल्ली आश्रम के लिए त्रियुगी जी का महत्त्व आप इस बात से ही समझ सकते है कि 2016 में उनके आश्रम छोड़ते ही श्रीअरविन्द कर्मधारा का केवल एक अंक निकला (हार्डकापी में) और तत्पश्चात पत्रिका ऑन लाइन हो गई।

त्रियुगी जी का एक बड़ा योगदान उनकी किताबें हैं। श्री माँ के 17 volumes का सार उन्होंने एक नया अभियान पुस्तक में उँडेल दिया। पूर्णयोग के सही स्वरुप को उन्होंने भागवत जीवन पुस्तक में सामने रखा है और श्रीअरविन्द के संदेश को लोकमानस तक पहुँचाने वाले कुछ प्रमुख साधकों की जीवनी उन्होंने अपनी पुस्तक 'भागवत जीवन की ओर' में पिरोयी है।

किसी आदमी को याद करने का सबसे अच्छा तरीका उसके काम को आगे बढ़ाने में सहयोग करना है।

हम सबको समय-समय पर रीवा महसुवा साधनालयों की ओर भी देखना चाहिए। दिल्ली हो, हरिद्वार हो या बद्रीनाथ हो, हर जगह आलीशान होटलों और आलीशान आश्रमों के बीच अंतर करना मुश्किल होता जा रहा है, त्रियुगी जी जैसे लोग इस अंतराल में अन्तर पैदा करते हैं। सादर स्मरण।

चरण सिंह केदारखंडी,जोशीमठ

पृष्ठ. 64

श्री त्रियुगी नारायण जी : स्मृतियाँ

त्रियुगी जी का जन्म 16 अक्टूबर 1932 को भारत के हृदय स्थल मध्यप्रदेश में रीवा के पास विन्ध्याचल की तराई में एक छोटे से गाँव महसुवा में हुआ, जिसको अब श्रीअरविन्द ग्राम के नाम से भी जाना जाता है।

त्रियुगी जी ने युवा अवस्था में ही अपने अग्रज-भ्राता के सान्निध्य में श्रीमाँ और श्रीअरविन्द के मार्ग पर कदम रखा और जीवनपर्यन्त उसी मार्ग में अग्रसर रह कर अपने साथ क्षेत्र के लोगों को इस पथ पर चलाने के लिए प्रेरणा स्रोत रहे एवं उनका मार्गदर्शन भी किया ।

त्रियुगी जी ने अपने जीवन काल के लगभग 26 वर्ष श्रीअरविन्द आश्रम दिल्ली शाखा में व्यतीत किये। उनका दिल्ली आश्रम, से पहला संपर्क सन 1971 को श्रीअरविन्द कर्मधारा के माध्यम से हुआ। यह पत्रिका अपने प्रकाशन के प्रांरभ से ही इनके पास आनी शुरु हो गई। शनै: शनै: इस पत्रिका से उनका जुड़ाव इस स्तर तक पहुँचा कि वो पहले तो पत्रिका के संपादक मंडल में रहे, फिर स्वयं उन्होंने संपादक के रुप में इसका कार्यभार भी संभाला। किन्तु सरलता से ओत-प्रोत त्रियुगी जी अपनीं एक पुस्तक में लिखते हैं: 'मैं विद्वान और लेखक नहीं हूँ और न इसके लिए मुझ में कोई योग्यता और क्षमता ही है, लेकिन फिर भी भगवान ने मुझ जैसे मूर्ख और अनाड़ी से संपादक का काम लिया। यही उसके कौतुक का रहस्य है। किसी अनजान और अबूझ व्यक्ति को इस तरह के कार्य सौंप देना जो उसकी पहुँच और वश का न हो, फिर उसके कारनामों को देखकर हँसना-चिढ़ाना और मजा लेना उस चतुर खिलाड़ी के क्रिया-कलाप हैं।'

दिल्ली आश्रम के संस्थापक श्री सुरेन्द्र नाथ जौहर 'चाचाजी' ने भी त्रियुगी जी की हिन्दी भाषा में पकड़ को जल्दी ही समझ लिया था एवं उनसे हिन्दी लेखन का कार्य करवाया।

सन् 1983-84 में त्रियुगी जी मीराम्बिका में प्रशिक्षण के सिलसिले में एक वर्ष के लिये दिल्ली आश्रम आए थे, वे लिखते हैं यद्यपि मैं मीराम्बिका में कुछ विशेष सीख तो नहीं पाया, हाँ, चाचाजी के सत्संग का अपूर्व अवसर जरुर मिला। इस दौरान चाचाजी उनसे संस्मरण कहानियाँ आदि डिक्टेट कर के लिखवाते थे।

चरणदास चोर, संगीत,ऋषि अलाउद्दीन खाँ,जनरल मैनेजर आदि कई कहानियों का सृजन इसी काल में हुआ। चाचाजी ने 'मेरी माँ' पुस्तक भी उनसे ही पूरी करवाई, तथा मैं और मेरी जन्मभूमि संशोधित लेखमालाओं का प्रकाशन करवाया।

त्रियुगी जी ने संपादकीय कार्य के अलावा आश्रम में SABDA का पूर्णकालिक कार्यभार भी

25 वर्षो तक बखूबी संभाला, वहाँ उनकी उपस्थिति इतनी स्थाई और जीवन्त थी कि आज भी वहाँ आने वाले उनको याद करते हैं।

त्रियुगी जी विनम्र स्वभाव एंव सहज सरल व्यक्तित्व के धनी थे, श्रीअरविन्द पर उन्हें अटूट श्रद्धा एवं विश्वास था, एक बच्चे की तरह निश्च्छल भाव से सदैव उन्हीं के कार्य में लगे रहना चाहते थे। उनके द्वारा रचित पुस्तक 'भागवत जीवन' में वे लिखते हैं, "अपनी सारी कमियों के बावजूद कठिनतम माने जाने वाले श्रीअरविन्द योग से मैं कैसे जुड़ गया पता नहीं। यह बात तो बहुत साफ है कि यह चुनाव मेरा नहीं ऊपर वाले का था।भगवान के इस खेल को समझ पाना मानव बुद्धि के सर्वथा परे है। कभी-कभी भगवान के कार्य भी मानव बुद्धि को उल्टे-पुल्टे लगते हैं। कुछ इस तरह की बात मेरे साथ भी घटित हुई, अनजाने में ही मैं ईश्वर के जाल में फंस गया, ऐसा फंसा कि निरन्तर उलझता ही गया। उसके ताने बानें का कहीं ओर न छोर"।

पहली घटना

दि. 5.2.1960 की शाम को गाँव के स्कूल में अचानक से आग लग गई। हल्ला होते ही गाँव के लोग पानी की बाल्टियाँ और सीढ़ी ले कर दौड़े और किसी प्रकार आग पर काबू पा लिया। पर स्कूल की आग बुझते ही दो फर्लांग ही दूरी पर बने त्रियुगी जी के परिवार के खपरैल के मकानों में आग लग गई। गाँव के लोग जब तक उसे बुझा पाते कि दूसरे मकानों में आग लग जाती। रात तक किसी प्रकार वह शान्त हुई, लेकिन सूर्योदय होते ही मकानों के बाहर भीतर सर्वत्र आग लगने का सिलसिला फिर शुरु हो गया। प्रत्येक आधे घण्टे में कहीं न कहीं आग लग जाती और सैकड़ों लोग जो वहाँ इकट्ठे हो गये थे,उसे बुझा देते। वे आगे लिखते हैं कि हमारे परिवार का संम्बन्ध श्रीमाँ से जुड़ चुका था, इसलिये प्रत्येक कमरे में माता जी के कलेण्डर लगा दिये गये। आग लगने और बुझाने का यह सिलसिला लगातार सात दिनों तक इसी प्रकार चलता रहा। पुलीस का घर के चारों ओर पहरा लगा रहता लेकिन आग लगने के रहस्य का कोई पता नहीं चल पाया। हम लोग प्रतिदिन s.o.s. टेलीग्राम माँ के पास भेजते रहे। पता चला कि श्रीमाँ के प्रधान सचिव श्री नलिनी कान्त गुप्त ने इन टेलीग्रामों को माँ के पास ले जाकर पढ़ा। माँ ने अपने भीतर झांका और बताया: 'There is one person in that family who is serving the medium of Asuric forces, locate him and isolate him immediately' यह कहकर उन्होंने हस्तक्षेप किया और सन्देश मिलते ही दि. 13.2.1960 को आग लगनी बन्द हो गई। पुलिस, ओझा,तांत्रिक और अधिकारी सभी भौचक्के रह गये।

दूसरी घटना

घटना 1995-96 के भयंकर अकाल की है। इन दो वर्षों में रीवा संभाग में वर्षा न होने के कारण भयंकर अकाल पड़ा था। हजारों जानवर और पक्षी भूख प्यास से तड़प-तड़प कर मारे गये थे।

इन्होंने अपने खेत में बने कुँए को गहरा कर लिया, कुँए में नीचे पानी आ गया। फिर गेहूं के एक दाने जमीन में गाड़ कर उसकी सिंचाई की। यह गाँव में अकेला खेत था जहाँ बाल्टी से सींच-सींच कर गेहूँ के पौधे एक एकड़ में उगाये गये थे। पशु-पक्षियों व मनुष्यों के अतिरिक्त कीड़े-मकौड़े भी तो भूखे थे। अतएव एक रात को उन्होंने पूरे खेत को खाकर पूरा साफ कर डाला। अब क्या करते ? तब उन्होंने अपनी वेघेली भाषा में माँ को पोस्ट कार्ड में एक चिट्ठी लिखी जिसमें उस भंयकर अकाल के साथ अपनी उजड़ी खेती का हाल लिखा। और माँ के हस्तक्षेप की प्रार्थना की थी। एक सप्ताह के भीतर ही श्रीमाँ का आशीर्वाद पुष्प आ गया। आशा बँधी पर घर में बीज नहीं था, इसलिये सोने के भाव बाजार से 10 किलों गेहूँ खरीद कर उसमें माँ के प्रसाद को मिला दिया गया फिर पहले की तरह ही पुनः दाने-दाने को खेत में गाड़ दिया गया। दाने तेजी से उगे और 15 दिन के भीतर खेत पूरा हरा-भरा हो गया, लेकिन यह क्या! अबकी बार कीड़ों ने भी पौधों को नहीं छुआ। इस (बम्पर क्रापँ) को देखने के लिए पूरे जिले के सैकड़ों लोग प्रतिदिन आने लगे। जबलपुर कृषि विश्वविद्यालय के वाइसचांसलर अपने शोधकर्ताओं को लेकर पहुँच गये और औसत से बड़ी बालियों की तस्वीरें लेने की होड़ लग गई। उस एक एकड़ के खेत में इतना अनाज हुआ कि कोठे भर गये और पूरे गाँव के किसानों को बोने के लिए बीज वितरित किये गए।

दूसरे वर्ष भी उतना ही भयंकर अकाल था क्योंकि वर्षा फिर नहीं हुई थी। लेकिन अबकी बार पूरा गाँव इसका सामना करने के लिए पूरी तरह से तैयार था। सभी ने सब्बल-हथौडों से अपने कुँए गहरे कर डाले और नवम्बर का महीना आते ही सभी ने उसी प्रकार अपने-अपने खेतों में माँ की उपज से प्राप्त बीज बो दिए।

गाँव के सभी खेतों में वैसी ही बम्पर क्रॉप उगी और पैदावार को देख कर आस-पास के लोग हतप्रभ रह गये । इस प्रकार भगवती की कृपा को देख कर इस गाँव को हरित क्रांति का स्रोत मान लिया गया और उसका नाम मध्य प्रदेश के नक्शे में एक आश्चर्य के रुप में लिख दिया गया।

इस तरह की कृपाएँ ल्रियोगी जी के जीवन में बरसती रहीं और उनके मन को श्रीमाँ के साथ अटूट बंधन में बाँधती गईं। वे जीवन पर्यन्त उनके कार्य में लगे रहे, यहाँ तक कि अपनी अंतिम घड़ी में भी मानों उनकी हर श्वांस माँ को पुकारती रही। उनकी गंभीर अस्वस्थता का समाचार पा कर मैं दिल्ली आश्रम से चल पड़ा। चलते समय तारा दी ने उनके लिए श्रीमाँ के आशीर्वाद पुष्प दिए। मैं वहाँ

पहुँचा,मुझे देख कर उनके मुख पर स्मित मुस्कान छिटक पड़ी। मैंने आशीर्वाद पुष्प देते हुए उन्हें नम्स्कार किया। त्रियोगी जी ने श्रीमाँ के आशीर्वाद पुष्प हाथों में लिए, उन्हें मस्तक से लगाया और चिर-निद्रा में सो गये जैसे इसी प्रतीक्षा में जगे थे।

श्रीमाँ के इस समर्पित बालक को पूर्ण आंतरिकता के साथ हमारा नमन!

श्री प्रकाश वर्मा

युवा-मुख से

नमस्कार! मैं सपना हूँ। मुझे यहाँ श्री अरविन्द आश्रम दिल्ली शाखा में आए लगभग सात महीने हो गए हैं। मैं यहाँ प्रशिक्षार्थी बन कर आई थी,मेरा विभाग (Department) हस्त कागज निर्माण कला था, मैंने अपने विभाग से बहुत कुछ सीखा। मैं अभी कार्यालय का कार्य सीख रही हूँ। जब मैं इस आश्रम में आयी थी, तो प्रथम दिन मुझे ऐसा लगा कि मैं यहाँ नहीं रहूँगी। फिर धीरे-धीरे यहाँ रहकर मेरे अन्दर बदलाव आने लगे। मेरी सोच बदलने लगी। इन छः महीनों में बहुत सारे उतार-चढाव आए, जिससे मुझे यहाँ रहना कभी अच्छा लगता और कभी नहीं। मैं आप सभी लोगों के सामने अपने मन की एक बात कहना चाहती हूँ, जो मैंने यहाँ रहकर अनुभव की । मैं यहाँ जब भी दुःखी होती हूँ, तो दूसरे दिन ही मुझे अपनी समस्या का समाधान मिल जाता है, कभी Meditation Hall (ध्यानकक्ष) में, तो कभी श्रीमाँ की किताब को पढ़कर। यहाँ रहकर मैंने अपने अन्दर की बहुत-सी बुरी आदतों को बदला है और अभी भी प्रतिदिन कुछ न कुछ नया सीखती रहती हूँ। मुझे यहाँ का वातावरण, अनुशासन, समय-प्रबन्धन और शान्ति बहुत अच्छी लगती है और मैं सभी को धन्यवाद कहना चाहती हूँ, अच्छी बातें सिखाने के लिए और अच्छा मार्ग दिखाने के लिए।

-धन्यवाद

नवम्बर, 2019

आश्रम की गतिविधियाँ

13 अगस्त 2019-फकीर कुटीर स्थल पर नवनिर्मित हवन-कुण्ड का उदघाटन। इस दिन चाचा जी (श्री सुरेद्रनाथ जौहर) के जन्म-दिवस के उपलक्ष्य में 'द मदर्स स्कूल' के विद्यार्थियों ने चाचाजी की स्मृति में कार्यक्रम प्रस्तुत किया।

14 अगस्त 2019 - 'द मदर्स स्कूल' के विद्यार्थियों में श्रीअरविन्द का जन्मदिन मनाया गया। उसी दिन विद्यालय की वार्षिक पत्रिका ' नवचेतना' का विमोचन तारा दीदी द्वारा किया गया।

15 अगस्त 2019 (दर्शन दिवस)- श्रीअरविन्द का जन्मदिवस मनाते हुए आश्रम के युवा वर्ग ने 'हॉल ऑफ' ग्रेस मे 'गंगावतरण' नाटक प्रस्तुत किया।

संध्या समय परेड के पश्चात समाधि-स्थल से आंरभ करते हुए आश्रम में दीप जलाए गए। ध्यान कक्ष नें नियमित ध्यान के बाद तारा दीदी द्वारा श्रीअरविन्द की वाणी का पाठ किया गया।

2 सितम्बर 2019 चाचाजी की पुण्य तिथि पर फकीर कुटीर -स्थल पर हवन किया गया तथा चाचाजी को श्रद्धांजलि दी गई।

28 सितम्बर- श्रीअरविन्द आश्रम (दिल्ली शाखा) द्वारा आयोजित व्यावसायिक प्रशिक्षण योजना के अन्तर्गत जिन प्रशिक्षार्थियों ने अपना छः मासिक प्रशिक्षण सफलता पूर्वक समाप्त किया ,उन्हें आश्रम ध्यान-कक्ष में आदरणीय तारा दीदी ने प्रमाण-पत्र प्रदान किए। प्रमाण-पत्र वितरण के पश्चात प्रशिक्षार्थियों ने आश्रम में अपने छः मासिक निवासकालीन अनुभव सुनाए जो संतोषजनक पाए गए।

तत्पश्चात तारा दीदी तथा वरिष्ठ प्रशिक्षक श्री भल्ला जी ने अपने स्नेह सिक्त शब्दों द्वारा प्रशिक्षार्थियों का उत्साह वर्धन करते हुए उन्हें अपनी शुभ कामनाँए दीं ।

अक्टूबर मास में अखिल भारतीय स्तर पर आश्रम द्वारा विविध विद्यालयों से आए अध्यापकों (प्रति विद्यालय दो अध्यापक) के लिए श्री माँ के द्वारा निर्देशित शारीरिक-शिक्षा प्रणाली पर आधारित एक सप्ताह कार्य शिविर का आयोजन किया गया। इस शिविर में भाग लेने वाले शिक्षकों को शारीरिक शिक्षा-प्रणाली के सैद्धान्तिक तथा प्रायोगिक दोनों ही पक्षों से अवगत कराया गया। शिविर-समापन के समय प्रत्येक विद्यालय के प्रतिनिधि शिक्षकों मे 15000/- मूल्य की खेल सामग्री निःशुल्क वितरित की गई।

बी0 एम0 एस0(बाँडी माइण्ड स्पिरिट) के अन्तर्गत श्रीअरविन्द आश्रम (दिल्ली शाखा) द्वारा नैनीताल स्थित आश्रम वन-निवास में प्रति वर्ष आर्थिक दृष्टि से पिछड़े बच्चों के लिए शिविर आयोजित किए जाते हैं जिसमें उन्हें ट्रैकिंग ,रिवर क्रॉसिंग, पर्वतारोहण और रैप्लिंग के शारीरिक प्रशिक्षण एवं योग तथा ध्यान अभ्यास की सुविधा उपलब्ध कराई जाती है। सात दिन के इस शिविर

में भाग लेने वाले बच्चों के आने-जाने एवं खाने-पीने का पूरा खर्च आश्रम वहन करता हैं। शारीरिक प्रशिक्षण के साथ ही बच्चों को शैक्षिक मूल्यों से भी परिचित कराया जाता हैं। इन शिविरों के आयोजन के मूल में आश्रम का उद्देश्य इन बच्चों के शारीरिक ,मानसिक विकास के साथ-साथ उनकी चेतना के उत्कर्ष का प्रयास करना है।

30 अक्टूबर से 1 नवम्बर, 2019

आश्रम प्रांगल में लगभग एक सौ बौद्ध भिक्षुकों के समूह द्वारा समवेत स्वर में मंत्रोच्चारण किया गया।